हिन्दी गद्य का विकास

लेखक
यज्ञदत्त शर्मा

राजपाल एन्ड सन्ज़
कश्मीरी गेट
दिल्ली

प्रकाशक
राजपाल एण्ड संज़, दिल्ली

मूल्य
दो रुपया

मुद्रक
रामा कृष्णा प्रेस,
कटरा नील, दिल्ली।

विषय-सूची

पुस्तक से पूर्व

हिन्दी गद्य-साहित्य के विकास पर एक दृष्टि डालने से पूर्व यह समझ लेना आवश्यक है कि हिन्दी-गद्य का विकास किन-किन परिस्थितियों में हुआ। जिस समय हिन्दी-गद्य का प्रादुर्भाव हुआ उस समय देश की क्या परिस्थिति थी, समाज की क्या स्थिति थी, शिक्षा का कैसा विकास था और शिक्षित वर्ग का दृष्टिकोण क्या था। कैसी सभ्यता का विकास हो रहा था, समाज कितने वर्गों में विभाजित था। शासक और शासित के पारस्परिक सम्बन्ध कैसे थे? जन-साधारण की आर्थिक दशा कैसी थी? खेती और उद्योगों की क्या दशा थी? जनता में अपनी स्थिति के प्रति संतोष था या असंतोष।

हिन्दी-गद्य के विकास का इतिहास भारतीय राष्ट्र की क्रांति की पृष्ठभूमि पर लिखा गया है। विदेशी सरकार और देश की जनता के विद्रोह की पूरी अनुभूति और उसका विकास हिन्दी-साहित्य की विभिन्न धाराओं मे विकसित हुआ है। हिन्दी-गद्य का विकास सरकारी सहयोग के फलस्वरूप नहीं हुआ। वह साहित्यकारों की प्रतिभासम्पन्न रचनाओं और विकासोन्मुख प्रेरणाओं से अनुप्राणित करने वाली जन-जागरण की प्रवृत्तियों द्वारा हुआ है। यही दशा हिन्दी-गद्य के साथ-साथ बँगला, गुजराती, मराठी, तेलगू इत्यादि के गद्य-साहित्य की भी रही है।

अंग्रेजी शासन के बन्धनों में जकड़ा जाकर भारतीय राष्ट्र मुर्दा नहीं हो गया। देश का वातावरण दो प्रकार के क्रांतिकारी वर्गों की विचार-धारा से प्रभावित हुआ। एक वर्ग ने हिंसात्मक क्रांति को अपनाया और दूसरे ने अहिंसात्मक क्रांति को। लोकमान्य तिलक की क्रांति-

भावना में हमें अहिंसात्मक क्रांति का रूप नहीं मिलता, अंग्रेजी शासन को किसी भी प्रकार उलट देने की भावना मिलती है। महात्मा गांधी ने अहिंसात्मक क्रांति का भारतीय राष्ट्र में बीजारोपण किया और देश की जनता को अंग्रेजी-शासन के विरुद्ध असहयोग-आन्दोलन द्वारा क्रांतिकारी विद्रोह के लिए जागरूक किया। अंग्रेजी शोषण का सामना करने के लिए तय्यार किया। जनता की शक्ति को संगठित और आंदोलित किया।

सन् सत्तावन के विद्रोह की ज्वाला भी अभी तक पूरी तरह शांत नहीं हो पाई थी। उसकी याद आज भी नौजवान-वर्ग के दिलों में कसक पैदा कर देती थी। ऐसे वर्ग के प्रतिनिधियों के रूप में जितेन्द्र-नाथ दास, भगतसिंह, राजगुरु, सुखदेव, चन्द्रशेखर आज़ाद इत्यादि के नाम इस काल के वे दहकते हुए अंगारे हैं जिन्हें बुझाया नहीं जा सकता।

एक ओर राजनीतिक क्षेत्र में जहाँ ये दो क्रांतियाँ चल रही थीं वहाँ दूसरी ओर भारतीय समाज भी पुराने अंधविश्वासों और रूढ़ियों से सम्बन्ध विच्छेद करता जा रहा था। वर्ण-व्यवस्था, जो बाद में जाति व्यवस्था बन गई, के बन्धन भी शिक्षित समाज में ढीले होते जा रहे थे। ब्रह्म-समाज और आर्य-समाज ने हिन्दू जनता में व्याप्त अन्ध-विश्वास और अज्ञान को मिटाने में भारी सहयोग प्रदान किया।

इस प्रकार देश के वातावरण में राष्ट्रीय स्वतंत्रता और सामाजिक चेतना का विकास हो रहा था। अंग्रेजी शिक्षा के माध्यम से, जिसे अंग्रेज भारत में केवल अपने शोषण को बल देने के लिये लाये, भारतीय विचारकों के दृष्टिकोण बदले, जर्मनी, फ्रेंच और रूसी साहित्य भी हिंदी में अंग्रेजी-माध्यम द्वारा आया। इसके फलस्वरूप जहाँ एक ओर भारतीय चेतना का सम्बन्ध वैज्ञानिक विकास से हुआ वहाँ नवीन राजनैतिक, आर्थिक और सामाजिक विचारधाराओं से भी उसका सम्बन्ध स्थापित हुआ।

एकदेशीय राष्ट्रीयता और सामाजिकता, जिसका विकास पूंजीवाद के विकास के फलस्वरूप हुआ था, मार्क्सवाद की विचारधारा से टकरा कर दहल उठीं। एकदेशीय भावना खोखली और स्वार्थपूर्ण दिखाई दी। सारे संसार के मज़दूरों का एक समाज बन गया। 'संसार के मज़दूरो एक हो जाओ' का नारा सुनाई दिया।

द्वितीय महायुद्ध ने मार्क्सवाद के प्रभाव को और भी व्यापक बना दिया। भारत का जन-जीवन और विशेष रूप से कल-कारखानों में काम करने वाला मज़दूर-वर्ग इस विचारधारा से बहुत प्रभावित हुआ।

इस प्रकार देश और विदेश की क्रांतियों, सामाजिक तथा राष्ट्रीय विप्लवों तथा जन-जागरण के आन्दोलनों के मध्य हिन्दी-गद्य और हिन्दी गद्य-साहित्य का विकास हुआ। समय की सब प्रवृत्तियों को अपने अन्दर समेट कर हिन्दी-गद्य साहित्य सामने आया। इसके अन्तर में क्रांतिकारी वीरों की आत्माएँ झाँक रही हैं। गांधीवादी आंदोलनों में जन-जागरण का जो रूप सामने आया उसका चित्रण भी हिन्दी गद्य-साहित्य में कुछ कम महत्वपूर्ण नहीं है। भारतेन्दु के साहित्य ने यदि सामाजिक सुधारों और राष्ट्रीयता के विचारों की पुष्टि की और उन्हें रंगमंच पर लाने के लिए नाटक-साहित्य की रचना की तो मुंशी प्रेमचन्द ने अपने उपन्यास और कथा-साहित्य में भारत के ग्रामीण जीवन को चित्रित किया। साथ ही राष्ट्रीय आन्दोलनों को भी आपने साहित्य की पृष्ठभूमि में रखा और मज़दूरों की दशा का भी चित्रण किया। पांडेय बेचनशर्मा 'उग्र' ने सामाजिक कुरीतियों पर यथार्थवादी चोट की।

हिन्दी गद्य साहित्य का नाटक, एकांकी नाटक, उपन्यास, कहानी, निबन्ध, आलोचना, जीवनी इत्यादि धाराओं में विकास हुआ। प्रतिभा-सम्पन्न हिन्दी-साहित्य के कलाकारों ने साहित्य की प्रेरणा उक्त विचारधाराओं से ग्रहण की। साहित्य में पात्रों को समय की

परिस्थितियों के अनुरूप रंगा, मानव की समस्याओं को देश और समाज की समस्याओं के अन्दर झाँका और फिर उनका यथार्थवादी, आदर्शोन्मुख यथार्थवादी तथा आदर्शवादी चित्रण किया।

मार्क्सवादी विचारधारा को लेकर प्रगतिवाद के नाम से हिंदी गद्य-साहित्य में एक नवीन चेतना का विकास हुआ। इस धारा ने हिंदी-साहित्य की धारा को न्यूनाधिक प्रभावित किया। इसके मूल में प्रगति की भावना थी। यह प्रगति आध्यात्मिक विचारधारा से भौतिक विचारधारा की ओर झुकी, व्यक्तिवादी भावनाओं की अपेक्षा समाजवादी दृष्टिकोण को इसने अधिक महत्व दिया। प्राचीनता की अपेक्षा नवीनता इसे अधिक आकर्षक लगी। यह नवीनता जैसी विचारों में थी वैसी साहित्यिक प्रयोगों में भी थी। प्रारम्भ में इस प्रगतिवाद का इतना ही रूप था। परन्तु धीरे-धीरे इसके अंतर्गत फ्रायड का पूरा काम-विज्ञान भी आ गया। प्राचीन संस्कृति और सभ्यता से सम्बन्ध विच्छेद करके प्रगति की यह धारा कुछ आगे बढ़ी। परंतु इससे पहले कि यह साहित्य की धारा अपनी कुछ मान्यताएँ स्थापित कर पाती, अपना कोई स्वरूप खड़ा करती, कई दिशाओं में बिखर गई। इसके ख़लीफ़ा भी आपस में टकरा गये। साहित्य के क्षेत्र में जो धारा एक आन्दोलन का रूप लेकर आई, वह वहीं पर बिखर गई। उसका वेग विभिन्न धाराओं में प्रवाहित होने के कारण अपना लम्बा मार्ग न बना सका।

इसके प्रधान कारण दो थे। पहला कारण तो यही था कि इसके प्रवर्तकों, समर्थकों या प्रचारकों में कोई ऐसा प्रतिभासम्पन्न व्यक्ति सामने नहीं आया जो हिंदी-साहित्य में अपना एकाकी स्थान बना पाता और अपनी मान्यताओं को ऐसे रूप में प्रसारित करता कि वे साहित्य की आत्मा बन जातीं। बल्कि इसके ठीक विपरीत इसकी मान्यताओं में नये संसार के नवाकर्षणों को समाविष्ट करके कुछ लेखकों ने अपनी-अपनी रुचि और अपनी-अपनी सुविधा के अनुसार अपने प्रगतिशील साहित्य का निर्माण कर लिया।

इसका स्पष्ट परिणाम यह हुआ कि यह साहित्य अपनी कोई निर्धारित दिशा न बना सका, अपना कोई सुव्यवस्थित, सुरुचिपूर्ण और सामाजिक तथा राष्ट्रीय उत्कर्ष का रूप खड़ा न कर सका।

यह सब होने पर भी इस विचारधारा के तत्वों ने इस समय के प्रायः सभी लेखकों को प्रभावित किया। छायावादी शृंगार-प्रवृत्ति प्रधान और निराशावादी कवियों में भी इसने 'प्रगति' और 'युगारम्भ' का बीजारोपण किया, उनकी दिशाएँ बदलीं। प्रगति की इस साहित्यिक धारा का प्रचलन पहले उर्दू में हुआ और बाद में हिंदी के अन्दर प्रसारित हुआ।

द्वितीय महायुद्ध समाप्त हुआ। विश्व की स्थिति बदली। भारत से अपनी पूँजी को अंग्रेजों ने युद्ध के दौरान में ही समेट लिया था। भारत की आर्थिक दशा उस समय बहुत गम्भीर थी। ऐसी दशा में भारतीय शासन की बागडोरें राष्ट्रीय सत्ता के हाथों में आईं। अंग्रेज़ अपने शासन-काल में भारत के धार्मिक अंधविश्वास का बराबर पारस्परिक वैर-भाव को बढ़ाकर, लाभ उठाते रहते थे। जाते समय भारत को उन्होंने दो भागों में विभाजित कर दिया। यह विभाजन हिन्दू और मुसलमान-धर्म को लेकर हुआ, जिसके फलस्वरूप पाकिस्तान की स्थापना हुई। इससे भी अधिक महत्वपूर्ण था भारत के मुसलमानों का पाकिस्तान जाना और पाकिस्तान के हिन्दुओं का भारत में आना और फिर खुदगर्ज़, धर्म के नामपर लूट मार करने वाले, नरपिशाचों द्वारा किया गया हत्याकाण्ड। अहिंसा से प्राप्त स्वराज्य की छाती पर जो छुरेबाज़ी हुई उसमे मानवता हिल उठी।

देश के इस राजनैतिक परिवर्तन का हिन्दी-गद्य-साहित्य पर गहरा प्रभाव पड़ा और इसकी पृष्ठभूमि पर हिन्दी-साहित्य की सभी रचनात्मक धाराओं में साहित्य-रचना हुई।

स्वतंत्रता के पश्चात हिन्दी गद्य-साहित्य का विकास और भी तीव्र गति के साथ हुआ। हिन्दी देश की राष्ट्र-भाषा बनी। राष्ट्र-भाषा

बनने का गौरव प्राप्त करने पर उसके उत्तरदायित्व का प्रश्न भी उसके सामने आया। हिन्दी के विद्वानों के सामने यह भी प्रश्न बहुत महत्व-पूर्ण था। अब केवल ललित साहित्य तक ही हिन्दी गद्य सीमित नहीं रह सकता था। राष्ट्र-भाषा बनने पर शिक्षा की माध्यम भी हिन्दी गद्य ही बना। परन्तु अभी तक हिन्दी-गद्य में विविध ज्ञान-विज्ञान के विषयों के ग्रंथों की न तो रचना ही हुई थी और न प्रकाशन ही। अंग्रेज़ी शासन-काल में अंग्रेजी के माध्यम द्वारा ही इतिहास, भूगोल, राजनीति, गणित, विज्ञान, अर्थशास्त्र, दर्शन इत्यादि का पठन-पाठन होता था। भारतीय विद्वानों ने भी इन विषयों पर जिन ग्रंथों की रचना की थी, वह अंग्रेज़ी में ही की थी, और उनके ग्रंथों का भी अध्ययन अंग्रेज़ी के माध्यम द्वारा ही हो रहा था।

हिन्दी के राष्ट्र-भाषा बनने ने एक समस्या खडी कर दी इन विद्वानों और इनकी पुस्तकों के प्रकाशन के सामने। परन्तु गत चार-पाँच वर्ष के परिश्रम के फलस्वरूप जो प्रगति सामने आई, वह आशा से भी अधिक संतोषजनक रही। इन सभी विषयों के अंग्रेजी ग्रंथों के हिन्दी में अनुवाद हुए और मौलिक ग्रंथों की भी रचना हुई। हिन्दी-भाषा का ज्ञान न होने से मौलिक लेखकों के सामने सभी विषयों पर सुन्दर ग्रन्थ प्रकाश में आये और हिन्दी-गद्य का विकास हुआ। गद्य का विकास हिन्दी-ललित साहित्य की सीमाओं को तोड़कर विभिन्न विषयो को अपने अन्दर समोता हुआ पूर्ण वेग के साथ प्रवाहित हुआ।

हिन्दी-गद्य में आज किसी भी ज्ञान-विज्ञान के विषयों की रचना करने की पूर्ण क्षमता है। इसका शब्द-भण्डार भी कम व्यापक नहीं है। शैलियाँ भी भाषा, भाव और विचार के आधार पर बन चुकी हैं। विषय के अनुसार शैली का चयन किया गया है। सभी दिशाओं में सभी विषयों की रचनाएँ हिन्दी-गद्य में आ चुकी हैं और इस अल्प काल में जितना विकास हुआ है वह कम नहीं है।

हिन्दी गद्य विकासोन्मुख है। हर दिशा में मौलिक ग्रंथों की रचना हिन्दी-गद्य में हो रही है। हर विषय के अंग्रेजी-ग्रंथों के अनुवाद भी हिन्दी गद्य में प्रस्तुत किये जा रहे हैं। इन अनुवादों की दिशा में साहित्य-एकाडेमी ने भी कदम बढाया है और लेखकों तथा प्रकाशकों के स्वतंत्र प्रयासों ने भी इस धारा को बल दिया है। इसके फलस्वरूप विश्व के महान् कलाकारों की कृतियाँ हिन्दी गद्य में आ रही हैं। हिन्दी-गद्य में अनुवाद और मौलिक, दोनों प्रकार के साहित्य का बहुत ही तीव्र गति के साथ विकास हो रहा है। आज के गद्य-साहित्य और आज से सात वर्ष पूर्व के हिन्दी गद्य साहित्य में आकाश-पाताल का अन्तर आ चुका है। संक्षिप्त रूप से हम इस छोटी सी पुस्तक में हिन्दी-गद्य के रचनात्मक-साहित्य, ज्ञान-विज्ञान के साहित्य और उन्हीं के अन्तर्गत अनुवाद-साहित्य के विकास पर प्रकाश डालेंगे। साथ ही उन सामाजिक और राजनीतिक परिस्थतियों का भी उल्लेख करेंगे जिन्होंने हिन्दी-गद्य-साहित्य के विकास को प्रेरणा दी है, विचार दिया है और पृष्ठभूमि प्रदान की है। इन्हीं के आधार पर आज हिन्दी-गद्य-साहित्य का विशाल और मजबूत ढाँचा बना है।

यज्ञदत्त शर्मा

•

: १ :

हिन्दी-गद्य का प्रारम्भ और परिमार्जन

संसार की प्राचीनतम भाषाओं का साहित्य पद्य मे है, इससे यह अनुमान लगाना, या प्रमाणित करने का प्रयत्न करना, कि उस काल में जन-साधारण में आम बोल-चाल की भाषा भी पद्यमय ही रही होगी, युक्ति-संगत नहीं। पुस्तक-प्रकाशन की व्यवस्था न होने के कारण उस काल के विद्वान् अपनी मूल्यवान श्रेष्ठ अनुभूतियों और मानवोपयोगी विचारों को पद्य-बद्ध करके अपने अनुयाइयों को कण्ठस्थ करा देते थे। मानव-सभ्यता के प्रारम्भिक विकास का साहित्य अधिकांश रूप में इसी प्रकार सुरक्षित रखा गया। परन्तु इस काल में भी आम बोल-चाल की भाषा का माध्यम पद्य न होकर गद्य ही था।

गद्य का प्रयोग साहित्य-निर्माण-कार्य के लिए इस कारण नहीं हो सकता था कि उसे सुरक्षित रखने और प्रसार करने का कोई साधन उपलब्ध नहीं था। साहित्य-निर्माण-कार्य के विकास का यह साधन मुद्रणालय था। मुद्रणालय की शक्ति और सहयोग के प्रभाव की मान्यता को हजारीप्रसाद जी ने भी अपने इतिहास में स्वीकार किया है। द्विवेदी जी ने तो मुद्रणालय को ही साहित्य को प्रजातांत्रिक रूप देने वाला माना है। मुद्रणालय ने ही लेखक और पाठक के बीच की सामंतवादी दीवार को गिराकर मार्ग साफ कर दिया। वस्तुस्थिति की वास्तविकता पर दृष्टि डालने से द्विवेदी जी के मत से असहमत होने की भी कोई बात दृष्टिगत नहीं होती।

मुद्रणालय के आविष्कार ने साहित्य-प्रसार की कण्ठस्थ करने वाली प्रणाली को अपने एक ही झटके से छिन्न-भिन्न कर दिया। विविध विषयों पर साहित्य का लेखन और प्रकाशन प्रारम्भ हो गया। अनेकों पत्र-पत्रि-

काओं के द्वारा योग्य सम्पादकों ने भाषाओं को परिमार्जित करने का प्रयास किया। लेखकों ने भी भाषाओं को मॉज-मॉज कर सुन्दर से सुन्दर शब्द योजना द्वारा नवीन-से-नवीन विषयों को लेकर रचनाएं की।

परन्तु मुद्रणालय के आविष्कार ने साहित्य के प्रकाशन को जो गति प्रदान की उसके साथ पद्य के वाहन को लेकर चलना असम्भव हो गया। मनोविज्ञान, अर्थशास्त्र, जीव-विज्ञान, मानव-विज्ञान, भौतिक विज्ञान, गणित, रसायन-शास्त्र, भूगोल इत्यादि दिशाओं में ग्रन्थों की रचना पद्य में नहीं हो सकती थी।

साहित्य-विकास के इस तीव्र और बहुमुखी प्रवाह को संसार की प्रायः सभी भाषाओं के गद्य ने प्रसारित किया। इसीलिए आज विश्व की सभी भाषाओं के साहित्य का प्रधान माध्यम पद्य न होकर गद्य ही है। इस युग-परिवर्तन का प्रभाव विश्व की सभी भाषाओं पर उनकी अपनी-अपनी राजनैतिक, आर्थिक, धार्मिक और सामाजिक परिस्थितियों के अनुसार हुआ, कही कुछ दिन पहले और कहीं कुछ दिन बाद। परन्तु संसार का एक भी देश और उसका साहित्य ऐसा न बचा जिसमें पद्य को छोड़ कर गद्य को साहित्य का प्रधान वाहन न बनाया गया हो।

यहीं से गद्य-युग का प्रारम्भ होता है।

भारतवर्ष भी, अपनी राजनैतिक, आर्थिक, धार्मिक और सामाजिक परिस्थितियों के साथ, विश्व की इस महान् क्रान्ति से सामंजस्य करके न चलता, यह सम्भव नहीं था।

भारत एक विशाल देश है और इसके विभिन्न प्रान्तों में बंगाली, मराठी, गुजराती, तामिल, तेलगू, उर्दू और हिन्दी भाषाएं बोली और लिखी-पढ़ी जाती थीं; आज भी लिखी-पढ़ी तथा बोली जाती हैं; और उनका अपना-अपना समृद्ध साहित्य भी है।

हिन्दी भाषा भारत के कई प्रांतों पर, अपना एकछत्र अधिकार

रखती थी। राजस्थान में डिंगल (राजस्थानी भाषा); ब्रज मे पिंगल (ब्रजभाषा), देहली, मेरठ के भू-भाग में खड़ी बोली, अवध में अवधी, मिथिला के आस-पास में मैथिली भाषा का प्रयोग चल रहा था। ये सभी हिन्दी भाषा के विविध रूप थे।

हिन्दी गद्य की प्राचीनता खोजने पर एक गोरखपन्थी गद्य-ग्रन्थ चौदहवी शताब्दी का मिलता है। परन्तु इसके चौदहवी शताब्दी के होने की बात भी प्रामाणिक नहीं है। दूसरी पुस्तक विट्ठलनाथ जी की 'शृंगार रस मण्डन' है। ये ग्रन्थ ब्रज भाषा मे लिखे गये हैं। इसी सम्प्रदाय के भक्तों की "चौरासी वैष्णवन की वार्त्ता" और "दो सौ बावन वैष्णवन की वार्त्ता" ग्रन्थ मिलते हैं। ये दोनों ग्रन्थ गोकुलदास जी के लिखे माने जाते हैं। पिंगल में भी पौराणिक, नैतिक और ऐतिहासिक विषयों पर गद्य-ग्रन्थ मिलते हैं।

हिन्दी-साहित्य ने सर्वप्रथम राजस्थानी भाषा को माध्यम बनाया और वीर-साहित्य का निर्माण किया। इस काल के प्रधान लेखक भाट और चारण ही थे। काव्य-ग्रन्थों के अतिरिक्त उन्होंने कुछ नीति, धर्म, इतिहास और अन्य शास्त्रों-सम्बन्धी गद्य-ग्रन्थ भी लिखे हैं, परन्तु साहित्य की दृष्टि से उनका कोई महत्व नहीं।

राजस्थानी के पश्चात हिन्दी-साहित्य की प्रधान भाषा ब्रज ही रही और लगभग पाँच सौ वर्ष तक यही भाषा हिन्दी-साहित्य की वाहिनी बनी रही। यों बीच-बीच मे गोस्वामी तुलसीदास और मलिक मुहम्मद जायसी ने अवधी में 'मानस' और 'पद्मावत' की रचना करके अवधी के महत्व को बढ़ाया, परन्तु अवधी ब्रज का स्थान न ले सकी।

इन पाँच सौ वर्षों की भक्ति और साधना के फलस्वरूप ब्रज-भाषा ने जिस गौरव-साहित्य का निर्माण किया वह गद्य में न होकर पद्य मे ही है।

ब्रज-भाषा के गद्य-साहित्य के अन्तर्गत मौलिक ग्रन्थ-रचना की अपेक्षा टीकाओं की ओर अधिक प्रवृत्ति मिलती है। हरिचरनदास लिखित

'विहारी-सतसई' और 'कविप्रिया' की टीकाएँ उल्लेखनीय हैं। इनका रचना काल १७७७ ई० और १७७८ ई० माना जाता है। इसी प्रकार की अन्य टीकाएँ भी मिलती हैं। स्वतंत्र ग्रन्थों मे डाकौर के प्रियदास की 'सेवक-चंद्रिका' (१८४७ ई०), हीरालाल लिखित 'आईने अकबरी की 'भाषा वचनिका' (१७९५) इत्यादि प्रमुख हैं।

विद्यापति की पुस्तक 'कीर्तिलता' में, जो कि एक चम्पू-ग्रन्थ है, यत्र-तत्र मैथिली-गद्य के भी नमूने मिलते हैं। इस गद्य में संस्कृत के तत्सम शब्दों का बाहुल्य है। परन्तु दशा इसकी भी किसी प्रकार राजस्थानी, ब्रज और अवधी से निखरी हुई नही है।

इस प्रकार इन टीकाओं और मौलिक ग्रन्थों की वृहद सूची न गिना कर हम यही कह देना पर्याप्त समझते हैं कि अभी तक जो गद्य लिखा जा रहा था वह सर्वथा अशक्त, अपूर्ण, अप्रभावशाली, अरोचक और गतिहीन था।

गद्य का वह स्वाभाविक विकास-युग अभी तक हिन्दी में नहीं आ पाया था जिसने साहित्य को मुद्रणालय को सुविधा प्रदान की और उस का प्रसार ज्ञान-विज्ञान की विभिन्न दिशाओं में किया।

आज जब हम हिन्दी-गद्य-साहित्य की बात करते हैं तो हमारा तात्पर्य उन पुराने राजस्थानी, ब्रज, अवधी, हिन्दी और मैथिली भाषा के गद्य से नहीं होता, हमारा स्पष्ट मतलब हिन्दी-खड़ी बोली के उस समृद्ध साहित्य से होता है जो मेरठ, देहली के आस-पास की बोली जाने वाली भाषा थी।

हिन्दी-खड़ी बोली और उर्दू के बोलने में दोनों के अन्दर कोई विशेष भेद दिखाई नही देता। परन्तु लिपिबद्ध होते ही दोनों दूर-दूर के देशों की भाषाएँ बन जाती हैं। एक के सिर पर इस्लाम का चाँद निकल आता है और दूसरी के सिर पर वैदिक धर्म का झंडा फहराने लगता है, जबकि मूल में दोनों के मामूली सा अन्तर है।

मुसलमानी राज्य के ह्रास-काल में यों व्यवस्था की बात सोचना भ्रम ही है, परन्तु फिर भी मुसलमानी दरबारों में बहुत से हिन्दू सम्मान की दृष्टि से देखे जाते थे। उनका एक पारस्परिक बोलचाल का माध्यम भी बन गया था। यह उर्दू और खड़ी बोली का ही रूप था। इस बोल-चाल का प्रभाव हिन्दू और मुसलमान, दोनों पर समान रूप से हो रहा था। देहली की इस भाषा का प्रभाव अन्य मुसलमानी प्रांतों पर भी हुआ। लखनऊ की सभ्यता में से यदि पूरब की मुलायम नजाकत को निकाल दिया जाय तो वहाँ की भाषा, देहली की भाषा बन जाय।

हिन्दी-खड़ी बोली-गद्य इस प्रकार चाहे राष्ट्र-भाषा कल घोषित हुई हो, परन्तु भारत के एक लम्बे-चौड़े भू-भाग की विचारवाहिनी भाषा यह मुसलमानों के शासन-काल से ही बनी चली आ रही है। अपभ्रंश के ग्रन्थों और संतों की बानियों तथा विनोदपूर्ण कविताओं में हमें खड़ी बोली के प्राचीनतम उदाहरण देखने को मिल जाते हैं। अकबरकालीन गग के 'चंद छन्द वरनन की महिमा' ग्रन्थ की भाषा खड़ी बोली के ही समान है।

दिल्ली की शक्ति क्षीण होने पर लखनऊ, मुर्शिदाबाद, पटना इत्यादि में मुसलमानी रियासतों के अन्दर यही शासक और सभ्य लोगों की भाषा रही। अठाहरवीं शताब्दी के अन्त तक खड़ी बोली का प्रसार और प्रच-लन इन सभी रियासतों में हो चुका था।

धीरे-धीरे धार्मिक प्रवचनों और शिष्ट लोगों में पारस्परिक बातचीत का माध्यम भी यही भाषा बनी। सन् १७४१ ई० में पटियाला दरबार के श्री रामप्रसाद जी कथावाचक ने 'भाषा योग वाशिष्ठ' बहुत ही सुन्दर भाषा में लिखी है। खड़ी बोली गद्य की यही दशा अठाहरवीं शताब्दी के अन्त तक चलती रही और उन्नीसवीं शताब्दी के मध्यकाल तक कहीं जाकर यह साहित्य की प्रधान वाहिनी भाषा बन सकी।

खड़ी बोली का भी उद्गम-स्थान भारत की अन्य प्रादेशिक भाषाओं की भाँति, अपभ्रंश साहित्य ही है। इतिहासकारों का मत है कि चाहे

खड़ी बोली-गद्य का कोई प्राचीन ग्रन्थ साहित्यिक महत्व का उपलब्ध नहीं है वरन् भारत के शिष्ट-समाज की भाषा बनने का गौरव खड़ी बोली को दसवी शताब्दी में ही प्राप्त हो गया था। (सन् १०६३-११४२) में जैन विद्वान् हेमचन्द्र सूरि का व्याकरण-ग्रन्थ 'सिद्ध हेमचन्द्र शब्दानुशासन' अमीर खुसरो की पहेलियाँ, नरपति नाल्ह का बीसलदेव रासो और संत कबीर की साखियों में खड़ी बोली का सुन्दर रूप देखने को मिलता है। इस प्रकार चाहे इस समय के पहले खड़ी बोली-गद्य में हमें महत्वपूर्ण साहित्यिक ग्रन्थ नही मिलते परन्तु साहित्य के पूरे तत्व उसमें विद्यमान थे।

किसी भाषा को किसी समृद्ध साहित्य का वाहन बनने के लिए व्यापक और सुन्दर शब्द-भण्डार की आवश्यकता है, एक वैज्ञानिक लिपि की आवश्यकता है और ये दोनों ही वस्तुएँ खड़ी बोली को उपलब्ध हो सकीं। इनके अतिरिक्त राजकीय संरक्षण और जनता के सहयोग का होना भी भाषा और साहित्य के विकास की मूल कड़ियाँ हैं।

मुसलमानी काल में यों हिन्दी कभी भी राज्य की भाषा नही रही, परन्तु आम बोल-चाल की भाषा यही थी और इसीलिए अप्रत्यक्ष रूप से इस वस्तुस्थिति का देश के उच्च वर्गो पर गहरा प्रभाव पड़ा और इस वर्ग के हिन्दू और मुसलमानों की भाषा ही एक हो गई। इसलिए राजनैतिक दृष्टि से जो सम्मान हिन्दी मे खड़ी बोली को प्राप्त हुआ, वह हिन्दी की किसी अन्य भाषा (ब्रज, अवधी, मैथिली और राजस्थानी) और प्रादेशिक भाषा को भी न मिल सका।

संस्कृत, अपभ्रंश, हिन्दी, उर्दू, फ़ारसी और अरबी के उपयुक्त से उपयुक्त शब्दों को लेकर खड़ी बोली ने अपना व्यापक शब्द-भण्डार बनाया, भाषा के आचार्यो ने शब्दों को माँजा और भाषा के मौलिक लेखकों ने उसमें देश के जागरण का इतिहास लिखा, राष्ट्रीय चेतना को चित्रित किया, बल दिया। इस संघर्ष के युग मे भाषा भी मंजी और साहित्य भी मँजा।

यह हिन्दी-गद्य का उषा काल था।

हिन्दी गद्य के आदि काल में मुंशी सदासुखलाल 'नियाज', इन्शा-अल्ला खाँ, लल्लूलाल और सदल मिश्र के नाम आते हैं। इन महानुभावों के नाम भी हिन्दी-गद्य के विकास-क्रम की कड़ियों के रूप में ही विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इनकी पुस्तकों में आज भाषा की खोज करने वाले विद्यार्थी ही दिलचस्पी ले सकते हैं और उन्ही के लिए ये महत्वपूर्ण भी हैं।

इन्हीं दिनों कलकत्ते में फोर्ट विलियम कॉलेज की स्थापना हुई। इस कॉलेज के हिन्दी और उर्दू के अध्यापक गिलक्राइस्ट थे। गिलक्राइस्ट ने हिन्दी तथा उर्दू दोनों में पुस्तकें लिखाईं। यह हिन्दुस्तानी या उर्दू को शिष्ट भाषा मानते थे, हिन्दी को नहीं। उन्होंने कुछ भाषा के पंडितों को नियुक्त किया। लल्लूलाल जी और सदल मिश्र इन्ही पंडितों मे से थे। इन दोनों ने हिन्दी-गद्य की पुस्तकें लिखने का कार्य किया।

सरकारी प्रयास से प्रथक स्वतंत्र प्रेरणाओ द्वारा भी साहित्य का विकास रुक नही गया था। दिल्ली निवासी सदासुखलाल जी ने इससे भी कुछ पूर्व 'भागवत' का 'सुख-सागर' नाम से रूपान्तर किया। इससे भी कहीं अधिक महत्वपूर्ण थी 'रानी केतकी की कहानी', जिसकी रचना लखनऊ के मुंशी इन्शा अल्ला खाँ ने की थी। हिन्दी गद्य साहित्य के विकास-क्रम को देखने से पता चलता है कि साहित्य ने सरकारी सहयोग की अपेक्षा अपने प्रतिभा-सम्पन्न प्राणवान लेखकों के बल से ही वास्तविक प्रगति की राह पर पग बढाया।

यहाँ हिन्दी गद्य-विकास के इस क्रम की उक्त ऐतिहासिक विभूतियों के विषय में थोड़ा जान लेना आवश्यक है।

मुंशी सदासुखलाल जी नियाज़—(१७४६-१८२४) आप ईस्ट इण्डिया कम्पनी के कार्यकर्त्ता थे। चुनार में एक अच्छे पद पर नियुक्त थे। यह अच्छे लेखक और कवि भी थे। ६५ वर्ष की अवस्था मे आप नौकरी

छोड़ कर प्रयाग आ गये। आपकी भाषा में स्वाभाविकता और स्पष्टता है।

मुंशी इंशाअल्ला खाँ—(मृत्यु १८१८) मुंशी इंशाअल्ला खाँ की लिखी 'रानी केतकी की कहानी' में लेखक का विशुद्ध हिन्दी लिखने का प्रयास है, जिसे वह अपने ही शब्दों में कहते हैं, "जिसमें हिन्दी छुट और किसी बोली की पुट न हो।" मुंशी जी की रचना-शैली पर फ़ारसी का स्पष्ट प्रभाव है। भाषा में प्रयास है, सहज-प्रवाह नहीं है।

लल्लूलाल जी—आपने 'प्रम-सागर' नामक एक ग्रन्थ की रचना की। इसकी भाषा तुकान्त है और इसमें ब्रज, खड़ी तथा विदेशी भाषाओं के शब्द भी आ गये हैं।

पं० सदल मिश्र—आपकी भाषा उक्त तीनों लेखकों से अधिक साफ़ सुथरी है। बिहारी होने के नाते उसमें कुछ पूर्वीपन अवश्य आ गया है। प्रवाह भी इनकी भाषा में खूब है, परन्तु फ़ोर्टविलियम के अधिकारियों ने इन्हें प्रोत्साहन नहीं दिया।

लल्लूलाल जी की भाषा अधिक दिन साहित्य में अपने पैर न जमा सकी। ब्रज का प्रभाव साहित्य की भाषा से धीरे-धीरे लुप्त होता गया और लेखकों की शैली आप-से-आप लल्लूलाल जी की शैली को छोड़कर पं० सदल मिश्र की शैली की ओर झुक गई।

सन् १८२३ में आगरा-कालेज की स्थापना हुई और इन्हीं दिनों में कलकत्ता के अंदर १८१७ ई० में "कलकत्ता स्कूल बुक सोसायटी" तथा आगरे में १८२३ ई० में "आगरा स्कूल बुक सोसायटी" की स्थापना हुई। इनके द्वारा स्कूली पाठ्य-ग्रंथों का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ।

स्कूली और कालिजी प्रयासों से कहीं अधिक महत्वपूर्ण हिन्दी-भाषा को परिमार्जित और प्रसारित करने में ईसाइयों के धर्म-प्रचार की योजनाओं ने योग दिया। ईसाई विद्वानों ने हिन्दू-धर्म और भाषा का अध्ययन किया और अपने धार्मिक ग्रन्थों का हिन्दी में अनुवाद कराया। यह कार्य सर्वप्रथम डैनिश मिशन के पादरी कैरे, मार्शमैन और वार्ड ने किया।

अंग्रेजों के सम्पर्क में आने पर योरोप में होने वाली वैज्ञानिक क्रांति का प्रभाव भारत से दूर नहीं रह सकता था। ईसाई मिशनरियों ने अपने धर्म-प्रचार के लिए देश में मुद्रणालयों की स्थापना की, हिन्दी के टाइप भी ढलवाये।

इसी समय से पत्र-पत्रिकाओं का भी जन्म होता है। 'उदन्त मार्तण्ड' हिन्दी का कलकत्ते से निकलने वाला पहला पत्र है। 'बंगदूत' हिन्दी का दूसरा पत्र है। इसका प्रकाशन अंग्रेजी, बंगला, हिन्दी और फ़ारसी, चार भाषाओं में हुआ। इस महान् प्रयास के व्यवस्थापकों में से राजा राम, मोहन राय, द्वारिकानाथ ठाकुर और प्रसन्नकुमार थे। सन् १८४४ ई० में राजा शिवप्रसाद सितारेहिन्द ने बनारस से 'बनारस' पत्र प्रकाशित किया। फिर और भी बहुत से पत्र निकले।

अंग्रेजी सरकार के कर्मचारी हिन्दी को गंवारू भाषा समझते थे और उर्दू को सभ्य भाषा। उर्दू को सभ्य भाषा समझने का प्रधान कारण यही था कि वे उसे भारत के अंतिम शासकों की भाषा समझते थे।

कचहरी और सरकारी दफ़्तरों में उर्दू को अपनाया गया। विद्यालयों में भी हिन्दी को स्थान न मिले, इसका भी प्रयास कम नहीं हुआ। सर सैयद अहमद, जो कि अंग्रेजों के विशेष कृपा-पात्र थे, हिन्दी को **'गंवारू बोली'** कह कर पुकारते थे। परन्तु इसी समय राजा शिवप्रसाद सितारे हिन्द शिक्षा-विभाग में आये। आप देवनागरी लिपि के पक्षपाती थे, परंतु फ़ारसी का प्रभाव इन पर भी कम नहीं था और सरकारी मत का एकदम विरोध करने की भी उनमें शक्ति नहीं थी। परन्तु फिर भी शिक्षा-विभाग में हिन्दी को उर्दू के बराबर स्थान दिलाने में राजा शिवप्रसाद ने सफल प्रयास किया। राजा शिवप्रसाद की भाषा में अरबी, फ़ारसी के शब्दों का बाहुल्य रहता था। 'मानव धर्म सार' और 'वामा मन रंजन' पुस्तकों में आपने संस्कृत-मिश्रित हिन्दी लिखने का भी प्रयास किया है।

जहाँ एक ओर हिन्दी-खड़ी बोली गद्य का सरकारी संरक्षण और सहानुभूति की छत्र-छाया प्राप्त करने के लिए प्रयत्नशील थी वहाँ दूसरी ओर अंग्रेजी सरकार और ईसाई-धर्म के भारत में आजाने से उनकी प्रतिक्रियाओं के फल-स्वरूप जो विद्रोह हुआ उसकी संदेश-वाहिनी के रूप में हिन्दी-गद्य अपना व्यवस्थित रूप निर्धारित करती चली जा रही थी।

जहाँ एक ओर ईसाई-धर्म के प्रचार के लिए हिन्दी में ईसाई-धर्म की पुस्तकें छपीं, वहाँ स्वामी दयानन्द सरस्वती का प्रधान ग्रन्थ 'सत्यार्थ-प्रकाश' भी हिन्दी-गद्य में लिखा गया और हिन्दी को ही स्वामीजी ने आर्य-भाषा घोषित किया। इसका अर्थ यह था कि यही आर्य (हिन्दू) परिवारों के युवक और युवतियों की अपनी प्राचीन संस्कृत और प्राकृत से परम्परागत आने वाली अपनी भाषा है, इसका पढ़ना और पढ़ाना प्रत्येक आर्य का परम धर्म है। आर्यसमाज के गुरुकुलों, कालेजों और विद्यालयों द्वारा हिन्दी के शिक्षण और पठन-पाठन को आन्दोलन-कारी प्रोत्साहन मिला। आर्य-समाज की विचार-धारा को लेकर अनेकों ग्रन्थ विशुद्ध हिन्दी-गद्य में लिखे गये। स्त्री-शिक्षा के क्षेत्र में इस साहित्य और प्रचार का महत्वपूर्ण योग है।

इस काल तक आते-आते हिन्दी-गद्य ने अपना एक व्यवस्थित रूप खड़ा कर लिया था। पत्र-पत्रिकाएँ निकालने और विचारों के प्रसार करने की क्षमता हिन्दी-गद्य में आ चुकी थी। लिखने की सफ़ाई तो लिखते-लिखते आती है। अब आवश्यकता थी प्रतिभासम्पन्न लेखकों की और योग्य सम्पादकों की जो लेखक के विचारों और भावनाओं का सम्मान के साथ परिशीलन करें और उस बनती हुई भाषा की इमारत की कटाई, छँटाई और सफ़ाई का ध्यान रखें।

ऐसे समय में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने अपने साहित्य की रचना की। आपकी भाषा में हिन्दी-गद्य का मधुर, सरल और चलता हुआ रूप मिलता है। आपने हिन्दी-गद्य को जो रूप दिया वह पहले के सभी रूपों से

भिन्न था और इसीलिए उसे अविलम्ब साहित्य में अपना लिया गया। न इसमें सदासुखलाल जी का पंडिताऊपन था और न लल्लूलाल जी की ब्रज-भाषा की तुकें और न राजा शिवप्रसाद का फ़ारसीपन था। यह भाषा राजा लक्ष्मण सिंह की भाषा से अधिक मिलती-जुलती थी, अन्तर यह था कि राजा लक्ष्मण सिंह की भाषा में कहीं-कहीं आगरे की भाषा की पुट थी और इसमें नहीं।

भारतेन्दु की मंजी हुई सुसंस्कृत हिन्दी-गद्य के सामने आते ही साहित्य के क्षेत्र में एक क्रांति ने जन्म लिया। हिन्दी को 'गँवारू बोली' कहने और समझने का साहस हृदय से क्षीण होने लगा और हिन्दी-प्रेमियों के हृदयों में उभार आया कि उनकी भाषा में भी अन्य भाषाओं के समान सुन्दर रचनाएँ हो सकती हैं।

भारतेन्दु जी साहित्य-प्रेमी होने के साथ-ही-साथ मानव-प्रेमी भी थे और अर्थ से उन्हें कितना निर्मोह था इसके विषय में बनारस में आज भी कथाएँ प्रचलित हैं। कितना सशक्त वातावरण रहा होगा उस महान् लेखक के त्याग का कि जिसकी छाप आज भी बनारस के वातावरण पर अंकित है।

पंडित प्रतापनारायण मिश्र, बदरीनारायण चौधरी, ठाकुर जग-मोहनसिंह, पं० बालकृष्ण भट्ट भारतेन्दु जी के समकालीन प्रमुख लेखकों में से थे। इन सभी लेखकों ने हिन्दी-गद्य के रूप को अपनी-अपनी व्यक्ति-गत विशेषताओं और योग्यताओं से संवारा और उसमें साहित्य-रचना की। इन्हीं लेखकों का लिखा साहित्य हिन्दी-गद्य-साहित्य की सीढ़ी का पहला पत्थर है, विशाल यात्रा की पहली मंज़िल है।

हिन्दी-गद्य बराबर परिमार्जित होता चला और उसमें अब पत्र-पत्रि-काओं में लेख तथा कुछ इनी-गिनी धार्मिक पुस्तकों के अनुवाद मात्र ही नहीं रह गये, वरन् पाठकों की रुचि के साहित्य का भी निर्माण हुआ। भारतेन्दु के नाटकों का साहित्य और धर्म के क्षेत्रों में हार्दिक सम्मान

हुआ। पंडित प्रतापनारायण की विनोदपूर्ण रचनाओं को हिन्दी-प्रेमियों ने प्रेमपूर्वक पढ़ा और उनमें आनन्द लिया। प्रेमधन के गद्य-काव्य को पढ़ कर किस हिन्दी-प्रेमी का मन आनन्दविभोर नहीं हो उठता। भाषा के हीरे की कणियों से जो लड़ियाँ प्रेमधन जी हिन्दी साहित्य की खूँटी पर टाँग गये, उसके जोड़ की आज तक कोई दूसरी लड़ी तैयार नहीं हो सकी। इसी प्रकार अन्य लेखकों ने भी साहित्य के भंडार को अपनी अमूल्य रचनाओं से भरा।

इस काल में हिन्दी-गद्य इतना सशक्त हो गया था कि उसमें स्कूली पुस्तकें छपने लगी थीं, पत्र-पत्रिकाएँ छपने लगी थीं, नाटक, कविता तथा अन्य धार्मिक ग्रन्थ भी प्रकाशित होने लगे थे। नाटकों और उपन्यासों की रचना हुई।

अम्बिकादत्त व्यास ने शास्त्रीय विषयों को हिन्दी-गद्य में सफाई के साथ प्रस्तुत किया और इस प्रकार प्राचीन को नवीन से मिला कर दोनों के मेल और विरोध के कारणों को लाकर एक स्तर पर खड़ा कर दिया। अम्बिकादत्त व्यास ने राजनैतिक समस्याओं पर प्रकाश डालने के लिए हिन्दी-गद्य का ही प्रयोग किया।

साहित्य की दिशाओं का विकास हुआ और उनके साथ-ही-साथ गद्य का भी विकास हुआ। व्याकरणाचार्य प्रतिभासम्पन्न मौलिक लेखकों की भाषा की काट-छाँट का विशेष अवसर ही न प्राप्त कर सके कि संघर्ष और गति ने काट-छाँट की आवश्यकता को अपने ही प्रहारों से साफ कर दिया।

हिन्दी-साहित्य के क्षेत्र में एक-से-एक सुन्दर, सुगढ़, सुरुचिपूर्ण, सुसंस्कृत, सरल, सबल, सअर्थ भाषा लिखने वाली प्रतिभाओं ने जन्म लिया और उनका प्रभाव अपने विचारों से सम्बन्धित समाज तथा लेखकों पर भी पड़ा। हिन्दी-गद्य इस प्रकार विचार के प्रसार का प्रधान माध्यम रहा।

आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी ने सरस्वती पत्रिका द्वारा भाषा के सम्पादन का महत्वपूर्ण कार्य किया है और हिन्दी के प्रचार तथा प्रसार में उनका महान् योग रहा है। मुंशी प्रेमचन्द ने हिन्दी भाषा को एक नवीन शैली प्रदान की। जयशंकर प्रसाद ने भाषा को सुसंस्कृत रूप दिया, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने अपने इतिहास की रचना द्वारा साहित्य को व्यवस्था प्रदान की। अब किसका नाम लें, आगे सोचना पड़ता है। एक साथ बहुत से नाम उन हिन्दी-गद्य लेखकों के सामने आते हैं जिन्होंने हिन्दी-गद्य के परिमार्जन के क्षेत्र में व्यक्त और अव्यक्त रूप से कार्य किया है।

हिन्दी-गद्य के विकास में, इसके रूप को एकरूपता देने का प्रयास यों प्रारम्भ से ही चल रहा था परन्तु विविध कारणों से वह एकरूपता आ नहीं पाती थी और वह आनी असम्भव भी है क्योंकि भाषा भी मानव की तरह सतत परिवर्तनशील है।

प्राचीनता का पक्षपाती लेखक-वर्ग संस्कृत-गर्भित हिन्दी को अपनी भाषा समझता था। लेकिन जन-आन्दोलनों से सम्पर्क रखने वाला और देश की जनता के सम्पर्क में आने वाला लेखक वर्ग इसे सहन नहीं कर सकता था। वह अपने साहित्य में जो बात कहना चाहता था उसे जब वह भाषा की दीवारों की कोठरी में बन्द पाता था तो उसको आत्मिक क्लेश होता था। प्रेमचन्द की भाषा इसी प्रकार की एक क्रांति को लेकर सामने आई और उसने वर्तमान-गद्य का नया रूप सामने खड़ा कर दिया।

आज भी हिन्दी-गद्य के व्यक्तिगतशैली विशेष की भिन्नताओं को प्रथक रखते हुए वे ही दो रूप सामने दृष्टिगत होते हैं, एक संस्कृत की तरफ झुका हुआ रूप और दूसरा आम बोल-चाल की भाषा का रूप।

जनता तक साहित्य का लक्ष्य मानने वाले लेखक वर्ग को सरल लोक-भाषा में साहित्य का निर्माण करना चाहिए, परन्तु प्रयोग और विचार की यह भिन्नता हमें हिन्दी के स्वनामधन्य आलोचकों में मिलती है। सिद्धान्त भी फैशन की चीजें बनते जा रहे हैं।

यह पीछे को चलने वाली प्रगति आलोचक के गर्व और उसकी महानता की कहाँ तक रक्षा कर पायेगी, इसमे भी संदेह है।

हिन्दी-गद्य के ये ही दो रूप आज भी प्रचलित हैं और इन्हीं के अंतर्गत राष्ट्र-भाषा का साहित्य लिखा और छापा जा रहा है। गद्य आज, साहित्य के विभिन्न अंगों के अतिरिक्त, विज्ञान, अर्थ-शास्त्र, समाज-शास्त्र, राजनीति, इतिहास, पुरातत्व-ज्ञान तथा टेकनीकल साहित्य की वाहिनी बनकर सम्पूर्ण क्षमता के साथ उन्नति के पथ पर अग्रसर है। गद्य के दोनों रूप उन्नत साहित्य-रचना में अग्रसर हैं। गूढ़ विषयों के लिए तत्सम शब्दों की शैली तथा गल्प-साहित्य के लिए आम बोल-चाल की भाषा-शैली का प्रयोग मिलता है।

: २ :

समकालीन परिस्थितियाँ और गद्य-साहित्य

हिन्दी-साहित्य का जन्म हिन्दू राजाओं के ह्रास-काल में हुआ। इस काल के कवियों ने अपने आश्रयदाता राजाओं की प्रशंसा में वीरता और शृंगार-प्रधान रचनाएँ कीं।

मुसलमान-काल में हिन्दी-साहित्य राजकीय संरक्षण प्राप्त न कर सका। परन्तु उसके प्रतिभासम्पन्न लेखकों ने अपनी अमूल्य रचनाओं के द्वारा हिन्दी-साहित्य की अबाध-धारा को सतत प्रवाहित रखा और हिन्दी-साहित्य के प्रेमी भक्त जनों ने इसे अपने धर्म-ग्रन्थों की भाषा के रूप में अपनाया।

देश की हिन्दू जनता के इस नैराश्यपूर्ण मुसलमानी दासता के जीवन में गोस्वामी तुलसीदास ने लोक-सेवा और कर्तव्य-पालन पूर्णभक्ति के साहित्य को प्रवाहित किया। सूर ने प्रेम भक्ति और सख्य भक्ति से आनन्दोल्लासपूर्ण वातावरण रास लीलाओं और कीर्तनों द्वारा प्रस्तुत किया। महाकवि कबीर ने हिन्दू और मुसलमान दोनों के बीच का सहज मार्ग जनता को सुझाया और अपनी वाणी द्वारा मूर्तिपूजा तथा मांसभक्षण दोनों का विरोध किया। अपढ़ जनता में जो रूढ़िवादी अंधकार छाया हुआ था उसे भी दूर करने का कबीर की वाणी में संकेत मिलता है। कबीर कोरे कवि ही नहीं थे, वह अपने समय के समाज-सुधारक भी थे और स्पष्ट बात कहने वाले थे। हिन्दी-साहित्य के एक और अमूल्य रत्न मलिक मोहम्मद जायसी को भी यहाँ विस्मरण नहीं किया जा सकता। आपने भारतीय आख्यायिका को लेकर सूफ़ी प्रेम से पूर्ण जो काव्य रचा है वह हिन्दी-साहित्य की अमूल्य निधि है। इसी काल में मुसलमानी शासन की प्रतिक्रिया के रूप में वीर शिवाजी का शासन-काल आता है इनके दरबार

में भूषण कवि की वाणी मुखरित होती है। इस काल में जाति ही राष्ट्र था। परन्तु वह राष्ट्रीयता आज के मानवतावादी व्यापक दृष्टिकोण के युग में कुण्ठित हो गई है।

हिन्दू राजे-महाराजों के दरबारों में भी कवियों का सम्मान होता था। परन्तु इस काल के इन राजकीय आश्रयप्राप्त कवियों का जीवन वीरगाथा काल के कवियों के जीवन से भिन्न था। समय भी भिन्न था। उन दिनों हिन्दू राजे स्वतंत्र थे और आक्रमणकारी मुसलमानों से टक्कर ले रहे थे और आज ये राजे अपनी मूँछें नीची करके मुसलमानी सल्तनत की आधीनता स्वीकार कर चुके थे।

इन राजाओं का कार्य-क्षेत्र अब उनके रंगमहलों और गाने-बजाने की महफ़िलों के अतिरिक्त और कुछ नहीं रहा। इन दरबारों के इस वातावरण में जो साहित्य लिखा जा सकता था वही इस काल का साहित्य है। नायक और नायिका वे ही भक्त कवियों के हैं, परन्तु उनमें वह स्वाभाविक करुणा ये कवि उत्पन्न नहीं कर सके जो सूर, तुलसी और मीरा के साहित्य में मिलती है।

ये लोग कलाकार अवश्य थे। उस श्रेणी के प्रतिभासम्पन्न कलाकार नहीं थे जिस श्रेणी में सूर, तुलसी, जायसी, कबीर, मीरा और रसखान को रखा जा सकता है परन्तु आचार्य ये लोग अवश्य थे, दम्भी और विद्वान् थे, हमारे आज के आलोचकों की पूर्व जन्मों की आत्माएँ थे। भाषा पर अधिकार रखते थे, साहित्य की कसौटियाँ, अलंकार-शास्त्र, रस-निरूपण और नायिका भेदों के उदाहरण-ही-उदाहरण देने में ग्रंथ पर ग्रंथ रचते चले जा रहे थे। भाषा के अधिकारी थे। सीमित शृङ्गार की मोहासक्त वासना को, और वह भी किसी पूरे पंडित की जागृत करने की रामवाण-गुटिकाएँ तय्यार की जा रही थीं।

इन लेखकों की रचनाओं का सम्बन्ध जनता से नहीं था। ये तो दरबारी लोगों की वाहवाही लूटने का साधन मात्र था। कलाबाज़ी उसमें ज़रूर थी परन्तु न तो उसमें कवि के हृदय की वेदना थी और न लोक-

जीवन का ही चित्रण था। आश्रयदाता उनके कृष्ण का स्वरूप होता था और उसकी प्रेमिका उनकी राधिका का स्वरूप।

यह साहित्य और इसकी प्रणाली अधार पर ही लटकी रह गई। जनता के बीच पैठ करने की न तो इस साहित्य के निर्माताओं की इच्छा ही थी और न उनके लिए यह साहित्य लिखा ही गया था। केशव, बिहारी, भिखारीदास, हिन्दी साहित्य की विभूतियाँ जनता से सम्पर्क न रखने वाली आचार्य किस्म की प्रतिभाएँ थीं।

मानव-जीवन की जागरूकता बढ़ रही थी। मानव का मस्तिष्क बराबर विचारशील था। वह अपने को आगे बढ़ने और उन्नत करने की दिशा में सोच रहा था। दुनियाँ की खोज करने के लिए साहसी योरोपियन अपने बेड़े लेकर इधर-उधर को निकल पड़े थे। ये लोग व्यापारी वेश धारण करके संसार-विजय के लक्ष पर निकले थे। योरोपियन देशों का यह आक्रमण करने का नया ढंग विश्व के सामने आया।

विश्व की जागरूकता और आगे बढ़ी, योरोप के देश ज्ञान-विज्ञान की दिशा में अपनी स्वतंत्र सत्ता होने के कारण बराबर उन्नति कर रहे थे। उनकी इस वैज्ञानिक प्रगति के बीच ईसाई धर्म के रूढ़िवादी अंध-विश्वासों ने काफी रुकावटें पैदा कीं, परन्तु प्रत्यक्ष की सचाई मान्यता को नहीं टिकने देती।

योरुप के साहसी लोग व्यापारी वेश धारण करके अपनी नवीन वैज्ञानिक उन्नति की शक्ति के द्वारा विश्व-विजय करने के लिये निकल पड़े। इससे पहले युग में पोप के संकेतों पर धर्म-युद्ध होते थे, परन्तु विश्व पर यह आक्रमण विभिन्न योरोपियन देशों के राजाओं के संकेतों पर हुए। आक्रमण का यह वैज्ञानिक ढंग था, जिसने विश्व के बहुत से देशों की संस्कृति, सभ्यता और शांति पर आक्रमण किया। भारत का दुर्भाग्य या सौभाग्य भी इसी परिस्थिति से टकराया।

योरोप के कुछ व्यापारी अंग्रेज, फ्राँसीसी और पुर्तगाली इत्यादि लोग

भारत में व्यापार के लिए आये और उनका सम्बन्ध यहाँ की सामाजिक दशा, धार्मिक अवस्था और आर्थिक व्यवस्था से हुआ। इस प्रकार देश का सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक वातावरण इन योरोपियनों के सम्पर्क से आन्दोलित हो उठा।

प्रारम्भ में जब ये योरोप के व्यापारी भारत में आये तो वहाँ की मंडियों के लिए यहाँ से तैयार माल ले जाते थे और अपने यहाँ का माल यहाँ लाकर बेचते थे। देश के बाजारों पर अपना अधिकार जमाने के लिये इन लोगों ने शक्तियाँ बटोरीं।

हिदी गद्य-साहित्य का प्रादुर्भाव देश की इसी राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक तथा सांस्कृतिक उथल-पुथल के युग में हुआ। देश बहुत सी छोटी-मोटी रियासतों में बंटा हुआ था। ईस्ट इंडिया कम्पनी के हाथों में भारत का काफी भू भाग आ गया था और अंग्रेज लोग भारत को पूरी तरह अपने शिकंजे में जकड़ने तथा यहाँ से व्यापारिक लाभ उठाने की चिंता में थे।

भारत के नवाबों और राजाओं में पारस्परिक वैमनस्य पैदा करके ये लोग एक लम्बी अवधि तक अपने कार्य की सिद्धि करते रहे। इन लोगों ने देखा कि यहाँ कोई एक ऐसी शासन-सत्ता नहीं है जो संगठित रूप से उनका विरोध कर सके। देश में केवल हिन्दू और मुसलमान राजे और नवाबों तथा उनकी जनता का ही आपस में वैमनस्य नहीं था, वरन् धार्मिक रूढ़ियों और अन्ध-विश्वासों ने भी देश की राष्ट्रीय शक्ति को खण्ड-खण्ड किया हुआ था।

इसी समय इंगलैंड में औद्योगिक क्रांति का सूत्रपात हुआ। मशीनों से कपड़ा बुना जाने लगा। अंग्रेज व्यापारी उस कपड़े को भारत के बाज़ार में बेचने के लिए लाये। परिणाम स्पष्ट था कि भारत के उद्योग-धंधे ठप्प हो गये और यहाँ के कारीगर बेरोज़गार हो गये।

देश में अंग्रेजी शोषण के चक्र को तीव्र गति के साथ चलाने के

लिये अंग्रेजों को तीव्र गति के साधनों की आवश्यकता हुई। देश का कच्चा माल सस्ते-से-सस्ते मूल्य पर इकट्ठा करके योरोप की मण्डियों में भेजने को देश में उन्हें रेल और सड़कों की आवश्यकता प्रतीत हुई। जब उनकी नीयत ही शोषण की ओर थी तो वे जानते थे कि दमन-चक्र भी चलाना होगा और उस दमन-चक्र में पिसती जनता की कराह-पुकार का मुँह बन्द करने के लिए पुलिस और फौज को भी रेलों और सड़कों की आवश्यकता होगी।

अपने व्यापर की उन्नति के लिए अंग्रेजों ने भारत में नहरें खुदवाईं और बड़ी-बड़ी नदियों के पुल बनवाये। उन्हें अपने दफ्तरों के लिए क्लर्कों की आवश्यकता हुई और उन्होंने विद्यालयों का प्रबन्ध किया। यह सब जो कुछ भी अंग्रेजों ने किया वह अपनी जड़ों को मज़बूत बनाने और भारतीय जनता का अधिकाधिक शोषण करने के लिए किया, परन्तु उन्हें क्या पता था कि उनके इन प्रयासों के मूल में भारतीय जनता की कितनी बड़ी राष्ट्रीय, सामाजिक तथा सांस्कृतिक क्रांति का बीजारोपण हो चुका था।

सन् १८५७ का विद्रोह केवल कुछ पदच्युत राजे और नवावों का ही प्रयास मात्र नहीं था। इसमें जनता की आवाज़ की भी प्रतिध्वनि थी। मेरठ के विद्रोह के नेता राजे महाराजे नहीं थे, साधारण लोग थे। इस विद्रोह का अंग्रेजों ने पूरी बरबरता के साथ दमन किया। यह विद्रोह व्यवस्थित नहीं था। विद्रोही राजाओं और जनता में बहुत कम सम्पर्क था। सामूहिक शक्ति न होने से विफलता अवश्य हुई परन्तु जनता के हृदयों में नई स्थापित होने वाली राज्य-सत्ता के प्रति एक मार्मिक कसक ने जन्म ले लिया।

अंग्रेजों का एकछत्र साम्राज्य भारत पर छा गया। अब रियासती राजाओं और नवाबों को छेड़ना सत्ता के अधिकारियों ने व्यर्थ समझा। इन लोगों की अय्याशी और ऐश-पसंदी में अंग्रेजों ने

और योग दिया और उन्हें अपनी-अपनी रियासतों के उत्तरदायित्व से और भी विमुख कर दिया। अब यह कम्पनी का राज्य नहीं, अंग्रेजी राज्य था। उन्हीं शासन-सत्ताओं का राज्य था जिनके इशारे पर किसी दिन कुछ अंग्रेज सैनिक व्यापारियों के वेश धारण करके विश्व-विजय के लिए निकले थे।

अंग्रेजी-शोषण देश की जनता को बराबर दरिद्रता की ओर ले जा रहा था। देश की आर्थिक अवस्था खराब होती जा रही थी। इसी बिगड़ी अर्थ-व्यवस्था, साम्राज्यवादी पराधीनता और सामाजिक विषमता के संघर्ष में राष्ट्रीय चेतना और क्रांति की ज्वाला सुलग रही थी।

सन् १८६७ में उड़ीसा अकाल के पड़ने से काल की भयंकर शय्या बन गया। सन् १८७३ और ७७ में बम्बई, मद्रास और मैसूर में अकाल पड़े और कई लाख वर्ग मील भू-भाग वीरान हो गया। सरकार ने जनता की इस आपत्ति-काल में कोई सहायता नहीं की। मरती हुई जनता को कुत्ते-बिल्लियों की मौत मरने दिया।

इन सब घटनाओं से राष्ट्रीय असंतोष बढ़ रहा था।

देश की सामाजिक अवस्था बदलना चाहती थी। राष्ट्रीय जागृति के अग्रदूत अपनी विचारधारा को जनता तक ले जाने के लिए कार्यक्षेत्र में उतर पड़े थे। वे देश में राजनैतिक क्रांति चाहते थे, सामाजिक क्रांति चाहते थे और सुव्यवस्थित अर्थ-व्यवस्था चाहते थे। देश को उसके शोषण के प्रति जागरुक करते थे। किसानों को जमींदारों और साहूकारों के शोषण की याद दिलाते थे और सरकारी दमन के विरुद्ध आन्दोलन करते थे।

अंग्रेज व्यापारियों के साथ-साथ ईसाई धर्म के प्रचारकों ने भी भारत में प्रवेश किया। यहाँ की जनता की नाड़ी देखी और उसकी आर्थिक दशा का निरीक्षण किया। ईसाई धर्म के प्रचार के लिए उन्हें यह अच्छी भूमि दिखाई दी। और उन्होंने देश के विभिन्न स्थानों पर

अपने मिशन खोले, मिशन-स्कूल खोले, जिनमें बाईबिल का पढ़ना अनिवार्य था।

स्कूलों के अतिरिक्त इन्होंने अपने धर्म का प्रचार करने के लिए बाईबिल को भारत की विभिन्न भाषाओं में छपवा कर बिना मूल्य के जनता में बँटवाया।

इस सब का प्रभाव देश की ग़रीब जनता पर होना प्रारम्भ हो गया और बहुत से गाँव-के-गाँव ईसाई हो गये।

हिन्दू-जनता पर ईसाई-धर्म के इस बढ़ते हुए प्रभाव को देखकर देश में शक्तिशाली प्रतिक्रिया हुई। बंगाल में इसका खुलकर विरोध राजा राममोहनराय और पूरे ब्रह्म-समाज ने किया और उत्तरप्रदेश, पंजाब तथा राजस्थान और गुजरात में आर्य-समाज ने किया।

इस युग के दो महान् समाज-सुधारक राजा राममोहनराय और स्वामी दयानन्द सरस्वती ने भारतीय सभ्यता और संस्कृति का संरक्षण इस आपत्ति-काल में बहुत सफलता के साथ किया। समय की परिवर्तित विचारधारा के प्रकाश में उन्होंने समाज और धर्म में प्रस्तुत रूढ़ियों का अवलोकन किया और उन बातों का खुलकर विरोध किया जो असामाजिक और अमानवीय थीं। अंधविश्वासों पर भी आपने करारी चोट की। हिन्दू-समाज का प्राचीन रूढ़ियों से अवरुद्ध मार्ग खोल दिया। बँगाल में विधवाओं का बलात सती होना सरकारी क़ानून द्वारा रुकवाया गया। स्त्री-शिक्षा पर बल दिया। अछूतोद्धार की ओर आर्य-समाज ने सक्रिय प्रयास किया। विधवाओं के उद्धार के लिए आश्रम खोले गये।

ये सभी समाज-सुधार की ओर किये गये प्रयास थे और इनका रूप हमें साहित्य में देखने को मिलता है। अंग्रेजों का प्रभाव सबसे पहले बंगाल पर हुआ क्योंकि बंगाल ही सबसे पहले अंग्रेजों के दमन-चक्र का केन्द्र बना। इसलिए यह सौभाग्य भी सर्वप्रथम यहीं के विद्वानों को प्राप्त

हुआ कि वे अंग्रेजी के माध्यम द्वारा विश्व-साहित्य के दर्शन कर सके, विश्व के वैज्ञानिक विकास से सम्पर्क स्थापित कर सकें।

प्राचीन कोटि का साहित्य हमारे संस्कृत-साहित्य में भरा पड़ा था; परन्तु साहित्य का जो नवीन रूप योरोप में गद्य के विकास ने पैदा किया उसका चलन हिन्दी में नहीं था। बंगाल के प्रतिभासम्पन्न लेखकों ने गद्य की नव-विकसित धाराओं और प्राचीन धाराओं के नवीनतम रूपों में रचनाएँ कीं। बंकिम, शरत और रवीन्द्र का उपन्यास तथा कथा-साहित्य बँगला ही नहीं, आज हिन्दी-गद्य की भी अमूल्य निधि है। इनके साहित्य में राजा राममोहनराय के आंदोलनों और उस समय के सामाजिक तथा राजनैतिक वातावरण की पूर्ण छाप मिलती है।

इस साहित्य में समसामयिक समाज और राष्ट्र की समस्याएं हैं, उनके हल हैं। इसके अतिरिक्त साहित्य का दूसरा रूप इतिहास के आधार पर भी खड़ा हुआ और उसमें साहित्य की इन्हीं धाराओं को उसी वेग और सम्पन्नता के साथ प्रवाहित किया। द्विजेन्द्रलाल राय के मुगलकालीन पृष्ठभूमि पर लिखे गये नाटकों को इस दिशा में परखा जा सकता है।

हिन्दी गद्य-साहित्य का प्रादुर्भाव भी इसी समय हुआ। जो दशा धर्म और समाज की बंगाल में थी, ठीक लगभग वैसी ही हिन्दी प्रांतों की भी थी। धर्म के क्षेत्र में साहित्य के पुराने प्रतीक राम और राधाकृष्ण की मान्यता बनी हुई थी और उनको नायक तथा नायिका का रूप देकर साहित्य ने भी स्वीकार किया हुआ था। परन्तु यह स्वीकृति भी पद्य, नाटक और आलोचना के क्षेत्र में ही मिलती है। उपन्यास, कहानी, जीवनी इत्यादि से इसका सम्बंध नहीं।

हिंदी गद्य के क्षेत्र में भी बंगला की ही भाँति नाटक, एकांकी नाटक, उपन्यास, कहानी, निबन्ध, जीवनी, आलोचना इत्यादि धाराओं के अंतर्गत रचनाएं लिखी गईं। इन रचनाओं की पृष्ठभूमि राष्ट्र के सम-

सामयिक समाज, उसकी समस्याओं, राजनीतिक अवस्थाओं और आर्थिक दशाओं पर आधारित है। समसामयिक साहित्य के साथ-ही-साथ ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर भी साहित्य का निर्माण हुआ और इस प्रकार दो पृथक-पृथक धाराएँ हमारे गद्य-साहित्य में भी दिखाई दीं।

हिन्दी-गद्य का प्रथम लेखक, जिसे रचनाओं के आधार पर लेखक माना जाय, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र हैं। संवत् १९२० में बंगाल की नई साहित्यिक-प्रगति से इनका सम्पर्क हुआ। बंगाल में नये ढंग पर लिए गये उपन्यास और कहानी तथा नाटक-साहित्य को आपने देखा। संवत् १९२५ में आपने 'विद्या सुन्दर' नाटक का हिन्दी में अनुवाद किया। उसके पश्चात अपनी मौलिक रचनाएँ भी लिखीं जो पूर्णरूपेण भारतीय संस्कृति की प्रतीक थीं।

यह देश के जागरण का समय था। शासन-व्यवस्था अवश्य विदेशी थी; लेकिन स्वतंत्रता की भावना का लोप नहीं हो गया था। विशेष रूप से लेखक-वर्ग में स्वतंत्रता, समाज-सुधार, रूढ़िवादी रुकावटों को दूर करने का संकल्प, धार्मिक अंध-विश्वासों से समाज को मुक्त करने की प्रेरणा, देश की ग़रीबी को दूर करने की उत्कृष्ट इच्छा की चेतना विद्यमान थी। हिन्दी-साहित्य में यही चेतना इस काल के लेखकों की मूल प्रेरणा थी और इसी के प्रकाश में प्रतिभासम्पन्न लेखकों ने रचनाएँ कीं।

इस जागरण के विकास को आधुनिकतम आविष्कारों, यातायात के साधनों और विद्या के प्रसार ने देश की जनता के बीच फैलाने में योग दिया। इन साधनों से राष्ट्र की आन्तरिक परिस्थितियों का विकास हुआ और चेतना का प्रसार।

इसी काल में देश की राष्ट्रीय-स्वतंत्रता का संग्राम देश के कोने-कोने में छिड़ा। हिन्दी-गद्य ने इस आन्दोलन को पूर्ण सहयोग दिया। हिन्दी के स्वनामधन्य उपन्यासकार मुंशी प्रेमचन्द ने भारत की ग्रामीण जनता

और यहाँ के शिक्षित वर्गों को लेकर उनकी मनोस्थितियों का चित्रण किया, उनके रहन-सहन, सामाजिक-स्तर, जीवन-निर्वाह के साधनों और आचार-व्यवहारों पर भी प्रकाश डाला। हिन्दी गद्य साहित्य का यह स्वरूप आज के समाज और उसकी प्रेरणा को अपने साहित्य का प्राण बनाकर चला।

हिन्दी गद्य-साहित्य का चेतना स्वरूप मध्य-युग के साहित्यिक दृष्टिकोण से सर्वथा भिन्न था। साहित्य में उगनेवाली मानवतावादी विचारधारा ने परोक्ष की भावनाओं को अपने मार्ग से हटा दिया था। नये युग की साहित्य-रचना में मनुष्य केवल सामाजिक इकाई के रूप में अपनी आत्मा की उन्नति करके स्वर्ग-प्राप्ति का मार्ग प्रशस्त नहीं करता, वरन् वह पूर्णता की प्राप्ति करता है। जगत् को वह माया-जन्य समझ कर घृणा की दृष्टि से नहीं देखता, अपनी बुद्धि और सामर्थ्य के द्वारा संसार की समृद्धियों का उपभोग करता है। यही व्यक्तिवाद का दृष्टिकोण है, जो रोमांटिक साहित्य की प्रेरणा बनकर सामने आता है।

हिन्दी गद्य साहित्य में न तो मध्य-युग की धार्मिक प्रवृत्ति के ही दर्शन होते हैं और न शृंगार की परम्परा ही आगे बढ़ती प्रतीत होती है। सामन्तवादी समाज की मान्यताओं को राष्ट्रीय चेतना से ओतःप्रोत साहित्य का साथ निभाना असम्भव था।

हिन्दी गद्य-साहित्य ने अंग्रेजी शासन-काल में विश्व की उन्नत भाषाओं के ही समान सभी साहित्यिक दिशाओं में रचना-सम्पन्न होना प्रारम्भ कर दिया। अपने राष्ट्र की चेतना के साथ-साथ विश्व की चेतना का प्रभाव भी हिन्दी-गद्य-साहित्य पर हुआ। मनोविज्ञान को लेकर मानव के चेतन, अवचेतन और अचेतन मन पर जो क्रियाएँ और प्रतिक्रियाएँ चलती हैं, उनको भी आधार मानकर गद्य-साहित्य की रचना हुई। मानव, बाहर की दुनियाँ से सम्बन्ध-विच्छेद करके, अपनी ही कुण्ठाओं से कैसे झगड़ता है और अपने को असामाजिक प्राणी बना लेता

है, इसके भी प्रतीक-पात्र हमें हिन्दी-गद्यकारों की रचनाओं में मिल जायेंगे।

फ्रायड के सेक्स-सिद्धान्त को लेकर भी कुछ लेखकों ने गद्य-साहित्य की रचनाएँ की हैं।

परन्तु इस मनोवैज्ञानिक और सेक्स-प्रधान गद्य-साहित्य में न तो सामाजिक चेतना के ही दर्शन होते हैं और न मानवतावादी दृष्टिकोण का ही रूप सामने आता है। कुण्ठाओं के दास जीवन मे उन्हें क्षय-रोग की तरह पालते हैं, जो स्वस्थ समाज के विकास और उसके नवीन-चेतना-सम्पन्न साहित्य के निर्माण में बाधक हैं। यह विकृत मानव के चिंतन की धारा है।

हिन्दी गद्य-साहित्य पर मार्क्सवाद की विचार-धारा का भी प्रभाव कम नहीं पड़ा। मार्क्सवाद के भौतिक और मानवतावादी दृष्टिकोण ने अपना पृथक रूप गद्य-साहित्य में प्रस्तुत किया। साहित्य की सभी धाराओं में मार्क्सवाद की विचारधारा को लेकर रचनाएं हुईं और इस विचार-धारा के लेखकों का साहित्य देश के जागरण की विचारधारा के साथ काफी हद तक सामंजस्य स्थापित कर सका।

इस प्रकार हिन्दी गद्य-साहित्य का विकास निरन्तर उन्नतिशील है। जब से हिन्दी राष्ट्र-भाषा बनी है तब से तो इसका विकास आशा से भी तीव्र गति के साथ आगे बढ़ रहा है।

गद्य-साहित्य को देश की स्वतंत्रता ने खुल कर श्वाँस लेने का अवसर प्रदान किया है। परन्तु खेद है कि जिन विषयों पर पराधीनता के युग मे लेखनी उठाना साहस का काम था, वह फ़ैशन मात्र बन गया है।

सन् १९४७ के बाद हिन्दी गद्य-साहित्य का आलोचना-भाग सबसे अधिक विकसित हुआ, यह आज के हर आलोचक का मत है। परन्तु इस आलोचना-साहित्य के विकास के मूल में विद्यालयों और विश्व-विद्यालयों की आकर्षक नौकरियाँ प्रधान है, साहित्य-लेखन की प्रेरणा

नहीं। यह साहित्य प्रयास का साहित्य है स्वाभाविक विकास का नही। इसमें कोई मूल प्रेरणा नहीं, अध्यापक का अपनी रुचि के अनुसार सुझाव और विद्यार्थी का आज्ञापालन मात्र है।

फिर भी खोज की दृष्टि से, पांडित्य की दृष्टि से, उसी दृष्टि से जिससे कि हमने रीतिकालीन साहित्य को परखा है, इस काल के आलोचना-साहित्य को भी महत्व देना आवश्यक है। इसका भी राष्ट्र के आर्थिक और सामाजिक विकास से कोई सम्बन्ध नही। यह गौण गद्य-साहित्य है, प्रधान गद्य-साहित्य नहीं है।

भारत की स्वतंत्रता के पश्चात भारत के दलित वर्ग को लेकर, भारत के किसान-वर्ग को लेकर, मजदूर-वर्ग को लेकर, देश की समस्याओं को लेकर, समाज की उलझनों को लेकर कितना साहित्य लिखा गया है इसका लेखा-जोखा करना बाकी है। हिन्दी के स्वनाम-धन्य अधिकांश आलोचकों का ज्ञान पहले आलोचकों की ही रायों पर आश्रित रहता है। मूल तक पहुँचने का उनके पास अवकाश ही नहीं और इसीलिए उन्हें साहित्य की हर धारा की गति अवरूद्ध दिखाई देती है।

हमारा मत स्पष्ट रूप से इसके विरुद्ध है। हिन्दी गद्य-साहित्य उन्नति के पथ पर अग्रसर है। राष्ट्र-भाषा होने से अनेकों विषयों के ग्रंथ बहुत तीव्र गति के साथ हिन्दी गद्य में प्रकाशित होते जा रहे हैं। हिन्दी के पुराने और नये कलाकार अपनी नवीन रचनाओं से गद्य-साहित्य के भंडार को भर रहे हैं।

*

: ३ :

नाटक-साहित्य का विकास

नाटक, भारतीय संस्कृति और हिन्दी-साहित्य के लिए कोई अपरिचित वस्तु नहीं थी। संस्कृत-साहित्य का समृद्ध नाटक-साहित्य इसकी प्राचीन सम्पत्ति है। साहित्य की क्लिष्ट पृष्ठभूमि से पृथक भी लोक-नाटक की परम्परा संस्कृत-काल से आज तक अबाध गति से प्रवाहित होती आ रही है। कालिदास और भवभूति के नाटक जहाँ एक ओर साहित्य के भंडार में सुरक्षित रत्नों के समान हैं, वहाँ आम जनता में कठपुतली के तमाशे भी भारत के कोने-कोने में प्रचलित थे, आज भी प्रचलित हैं। हिन्दी-साहित्य के भक्ति-काल में रामलीला की प्रणाली और फिर उसकी व्यापक परम्परा भी नाटक से सम्बन्ध रखती है। रास लीलाएँ भी नाटक के ही रूप हैं।

नाटक दृश्य-काव्य है और संस्कृत के सभी नाटक प्रायः पद्य-प्रधान थे, परन्तु हिन्दी में नाटक-साहित्य का विकास पद्य-युग में न होकर गद्य-युग में हुआ। मुसलमानी शासन-काल में नाटक-साहित्य का विशेष ह्रास हुआ, क्योंकि नाटकीय प्रदर्शन मुसलमानी मज़हब की दृष्टि से अधार्मिक समझे जाते थे।

१९ वीं शताब्दी में देश का वातावरण दुबारा बदला। आज के जीवन की प्रत्येक दिशा में जाग्रति दिखाई दी। नाटक-साहित्य, क्योंकि दृश्य-साहित्य था, इसलिए सबसे अधिक प्रभावोत्पादक हो सकता था। इसीलिए इस युग के लेखकों ने जनता के बीच साहित्य को गति प्रदान करने के लिए सर्वप्रथम नाटक-साहित्य को ही अपनी रचनाओं का प्रधान माध्यम बनाया।

हिन्दी नाटक-साहित्य की प्राचीनता पर विचार करने के लिए कुछ अनुवाद सामने आते हैं परन्तु उनसे नये युग की कोई भी प्रवृति मुखरित नहीं होती।

संस्कृत के नाटकों में गद्यांश बहुत ही कम हैं। परन्तु उनके हिन्दी अनुवादों में पद्य को प्रधानता दी गई है। **नेवाज** कवि ने 'शकुन्तला' तथा **बनारसीदास** ने 'समयसार' इत्यादि अनुवाद किये। हिन्दी नाटक-साहित्य की प्राचीनता सिद्ध करने वाले 'आनन्द रघुनन्दन' और 'प्रभावती' नाटक भी हैं। 'नहुप' नाटक की रचना भारतेन्दु जी के पिता कविवर गिरधर दास ने की। **राजा लक्ष्मण सिंह** ने 'शकुन्तला' का अनुवाद किया।

इन नाटकों से न तो समाज की प्रगति का ही पता चलता है और न साहित्य की गति का ही। ये संस्कृत की उत्तम रचनाओं के अनुवाद हैं और इनके विषय पौराणिक हैं। आधुनिकता की इन नाटकों पर तनिक भी छाप दिखाई नहीं देती।

नाटक-साहित्य का यह विकास वर्तमान् हिन्दी-नाटक के इतिहास की प्रथम कड़ी के रूप में स्वीकार नहीं किया जा सकता। हिन्दी-साहित्य के वास्तविक रूप में प्रथम नाटककार भारतेन्दु ही हैं। संवत् १९२५ में आपने बंगला से 'विद्यासुन्दर' नामक एक नाटक का अनुवाद किया। 'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति' आपका पहला मौलिक नाटक है। इनके अतिरिक्त आपने 'प्रेम-योगनी', 'सत्य-हरिश्चन्द्र', 'मुद्रा-राक्षस', 'विषस्य विषमौषधम', 'चन्द्रावती', 'भारत-दुर्दशा', 'नीलदेवी', 'अंधेरनगरी' इत्यादि चौदह नाटकों की रचना की।

भारतेन्दु ने यों तो नाटक, निबन्ध, जीवनी, उपन्यास इत्यादि गद्य-साहित्य की सभी धाराओं में योगदान दिया है, परन्तु इनकी प्रतिभा का जैसा विकास नाटक-साहित्य में हुआ, वैसा अन्यत्र नहीं। भारतेन्दु ने अंग्रेजी, बंगाली और संस्कृत-नाटक-साहित्य का अध्ययन किया था। रंगमंच का भी आपको ज्ञान था। फिर यह आन्दोलनकारी युग था

और युग-चेतना ने सामाजिक तथा राजनैतिक विचारों से ओत:प्रोत साहित्य के विषयों के भंडार का मुँह खोल दिया था। समाज की कुरीतियों का सुधार, पोंगापंथियों का भंडा-फोड़, स्त्री की सामाजिक दशा का सुधार, शिक्षा का प्रसार, राष्ट्रीय स्वतंत्रता की ध्वनि, ये सभी समस्याएँ नाटकों की रचना के विषय बनने को उद्यत थीं और इन सभी का भारतेन्दु-नाटकावली ने स्वागत् किया।

भारतेन्दु और उनके युग के सभी लेखकों की ये ही विचार धाराएँ रहीं और सभी ने नवीनयुग के प्रकाश में अपनी प्राचीन संस्कृति और साहित्य को परखा। परन्तु इन लेखकों के नवीनता से प्रभावित होने तथा उसका उपयोग करने का यह अर्थ नही था कि उन्होंने अपनी प्राचीन संस्कृति और उसकी उदात्त परम्पराओं से सम्बन्ध विच्छेद कर लिया था। जो कुछ उन्होंने किया, वह था नवीन और पुरातन का सामंजस्य। प्राचीन संस्कृति की अचल सम्पत्ति को नये युग के प्रकाश में आँका था।

'सत्य हरिश्चन्द्र' नाटक में 'सत्य-निष्ठा', 'चारित्रिक बल', 'त्याग', 'आत्मिक बल', 'राज्य-धर्म', 'दाम्पत्य-धर्म' इत्यादि के भारतीय परम्परागत आदर्शो की निष्ठा है। 'भारत-दुर्दशा' में देश के अन्दर फैली कुरीतियों और दुर्गुणों का रोना रोया गया है। बहुत ही मार्मिक चित्रण है। साथ ही आदर्शवादी भविष्य का संकेत भी है, संदेश भी है उन्नति का। 'नीलदेवी' ऐतिहासिक नाटक है। स्त्री के सतीत्व और साहस की यह अमर कहानी है। देश-प्रेम का संदेश लेकर आती है। 'चन्द्रावती' में प्रेमा भक्ति के अनुसार नाटककार ने प्रेम, विरह और मिलन का नाटकीयकरण प्रस्तुत किया है।

भारतेन्दु के नाटक रंगमंच पर भी खेले जा सकते हैं। इनकी भाषा सरल और आम लोगों की समझ में आने वाली है। केवल पाठ्यक्रम की अनुसंधानित भाषा, शैली और विषय के आधार पर लिखे हुए आपके

नाटक नहीं हैं। उनमें युग की वाणी बोलती है और वे भापा की शैली में बँधकर जनता की भाषा से दूर नहीं हुई।

भारतेन्दु के नाटकों को आधुनिक कला-विकास और प्रणाली के आधार पर आँकना निर्मूल है क्योंकि परिस्थितियों के आधार पर ही वस्तु को आँकना सत्य होता है। भारतेन्दु के नाटकों में हमें प्राचीनता के प्रति मोह और नवीन के लिए आकर्षण दिखाई देता है।

भारतेन्दु से प्रेरणा लेकर हिन्दी नाटक-साहित्य दो प्रधान धाराओं में बहना प्रारम्भ हुआ। एक धारा के नाटक उपदेशात्मक, धार्मिक, सामाजिक और पौराणिक थे। दूसरी धारा का सामाजिक जीवन से कोई सम्बन्ध नहीं रहा। वे केवल स्त्री और पुरुषों के रोमांस तक ही सीमित रह गये। इस धारा के नाटककारों ने जो रंग-मंच अपनाया वह भारतीय न होकर पारसी था। इस नाटक-साहित्य का लक्ष्य केवल मनोरंजन था और वह भी हलका और आवारा किस्म का। जिसका प्रचलन आगे चलकर हमारे देश के सिनेमा रंग-मंच पर बहुत भयानक रूप में हुआ। गन्दे किस्म के गाने, ऐयाशी और बदकारी के खेल रंग-मंच पर आये। ऐश-पसंद रईस और जीवन मे ऐश का स्वप्न देखने वाले ग़रीब मजदूर वर्ग ने सिनेमाघरों की खिड़कियों पर कई-कई क्यू लगाकर इन्हें प्रोत्साहन दिया। सिनेमा के वैज्ञानिक विकास ने पारसी कम्पनियों के पर उखाड़ दिये और उनके पर्दे जहाँ-तहाँ नीलाम होते फिरे। इन कम्पनियों में काम करने वाले कलाकारों और लेखकों का ध्यान सिनेमा की ओर हुआ। इसके दो प्रधान कारण थे।

प्रथम तो यह था कि ये लोग जिस समाज में रहने के आदि हो गये थे, वह देश के समाज से भिन्न था। इनका जीवन अय्याशी और मद-पान के कारण खर्चीला हो गया था। और यह सुविधा इन्हें अधिक आय वाला कार्य ही प्रदान कर सकता था, साहित्य-सेवा नहीं। दूसरा कारण यह भी था कि इन लोगों के पास जो कला थी वह भी पांडित्यपूर्ण नही थी। साहित्य में उसका कोई स्थान नहीं बन सका।

भारतेन्दु के समकालीन लेखकों में **श्रीनिवास दास** ने 'रणधीर मोहिनी' दुखान्त नाटक की रचना की। आधार अंग्रेजी नाटक 'रोमियो एण्ड जूलियट' है। पाटन के राजकुमार और सूरत की राजकुमारी की प्रेम कहानी है। 'संयोगिता-स्वयंवर', 'प्रह्लाद-चरित्र', 'तप्ता-संवरण' आपके अन्य नाटक हैं। **प्रतापनारायण मिश्र** ने 'हठी हमीर' और 'गो-संकट' सुन्दर नाटक लिखे। **बदरीनारायण 'प्रेमधन'** ने 'भारत-सौभाग्य' एक विचित्र नाटक की रचना की। इसका कथानक अस्वाभाविक है। **मिश्र जी** और **बालकृष्ण भट्ट** ने सुन्दर प्रहसनों की रचना की। **राधाकृष्णदास** ने 'दु:खिनी बाला', 'पद्मावती', 'धर्मालय' और 'महाराणा प्रताप' नाटक लिखे। **किशोरीलाल गोस्वामी** ने 'मयंक मंजरी' और 'नाट्य-सम्भव' की रचना की। **दामोदर शास्त्री** ने 'रामलीला', 'कंस-वध', 'बाल-विवाह' नाटक लिखे। **अम्बिकादत्त व्यास** ने 'ललिता' नाटिका लिखी। **तोताराम वर्मा** ने 'विवाद-विडम्बन' नाटक लिखा।

उक्त नाटकों की नामावली को देखने से स्पष्ट दिखाई देता है कि इनकी कथावस्तु धार्मिक कथाओं और सामाजिक अवस्था तथा प्रणालियों पर आधारित है। धार्मिक प्रवृत्ति प्रधान होने से इस साहित्य में उपदेशात्मकता अधिक है।

नाटकों की रचना के साथ-ही-साथ इस काल में प्रहसनों की रचना भी हुई। हास-परिहास की यह छटा इस काल के लेखकों की जीदारी की द्योतक है। समय की अंध-विश्वासपूर्ण रूढ़ियों का दिग्दर्शन इन लेखकों ने प्रहसनों के अन्दर भी किया। सामाजिक कुरीतियों का भी चित्रण प्रहसनों में बहुत मार्मिक हुआ। **भारतेन्दु** ने 'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति' नाटक में धार्मिक अनाचार और पाखंड का मज़ाक उड़ाया है। **बालकृष्ण भट्ट** ने वेश्या-वृत्ति और नशे पर रचनाएँ की हैं। **देवकीनंदन** खत्री ने 'रक्षा-बन्धन', 'स्त्री-चरित्र', 'वेश्या-विलास' और 'एक-एक के तीन-तीन' प्रहसन लिखे हैं। **राधाचरण गोस्वामी जी** ने 'लोग देखें तमाशे', 'बूढ़े मुँह मुहासे', 'तन मन धन श्री गोसांई जी के अर्पण' प्रहसन लिखे। गोस्वामी

जी ने हिन्दू-मुसलमान किसानों का मिल कर जमींदार के विरुद्ध विद्रोह करना चित्रित किया है। हिन्दी साहित्य में वर्ग-चेतना का यह सुन्दर उदाहरण है।

मौलिक रचनाओं के अतिरिक्त इस प्रथम उत्थान-काल में अंग्रेजी और बंगला-नाटकों के अनुवाद भी हुए। स्वयं भारतेन्दु ने संस्कृत के 'कर्पूर-मंजरी', 'पाखण्ड-विडम्बन' 'धनञ्जय-विजय', और 'मुद्रा-राक्षस' नाटकों का अनुवाद किया। **लाला सीताराम** ने 'मालती माधव', 'उत्तर रामचरित', 'मृच्छकटिक', 'नागानन्द', 'माविआग्नि मित्र' आदि अनुवाद किये। **बालमुकुन्द गुप्त** ने 'रत्नावली' और 'वेणीसंहार' का अनुवाद **ज्वालाप्रसाद मिश्र** ने किया।

संस्कृत के अनुवादों के साथ-ही-साथ **तोताराम वर्मा** ने **एडीसन** के नाटक 'केटो' का 'केटो-वृतान्त' और **शेक्सपीयर** के मर्चेन्ट ऑफ़ वेनिस' का 'वैनिस-नगर का व्यापारी', 'एज़ यू लाइक इट' का 'मन-भावन', 'रोमियो और ज्यूलियट' का 'प्रेम-लीला' तथा 'मेकबथ' का 'साहसेन्द्र साहस' नाम से अनुवाद किये। बहुत से बंगाली के अनुवाद भी इन्हीं दिनों हिन्दी में आये। इनमें 'वीर-नारी', 'पद्मावती', 'सती नाटक', 'दीप निर्वाण' इत्यादि उल्लेखनीय हैं।

जिस युग में यह साहित्य लिखा जा रहा था उस समय उनके पास अपना पुराना भारतीय रंगमंच था, जिसकी अपनी मर्यादायें थीं, अपनी सांस्कृतिक विचार-धारा थी, मनोरंजन भी उसमें अवश्य था परन्तु वह कुत्सित और हल्की प्रेम-लीलाओं का ही माध्यम नहीं था। उसमें प्राचीन गौरव का इतिहास था, उसमें परिवार की मर्यादा थी, उसमें नारी को समाज में वही स्थान देने की ओर संकेत किया गया था जो उसको वैदिक काल में प्राप्त था।

ऊपर हम बता चुके हैं कि इस समय का नाटक-साहित्य स्पष्ट रूप से दो धाराओं में बहने लगा था। दूसरी धारा का प्रवर्तन केवल

'मनोरंजन' को प्राथमिकता देकर चला और तड़क-भड़क वाले पारसी रंगमंच ने भारतीय लोक-नाटक के विकास पर जबरदस्त कुठाराघात किया। रंगमंच सामाजिक, धार्मिक और साहित्यिक-कला-चेतना का विकास-साधन मात्र न रहकर अश्लील और गन्दे गानों से पूर्ण इश्किया मनोरंजन का साधन बन गया। इन तड़क-भड़क के नाटकों ने समाज में आवारगी और बेहूदा मज़ाकों को जन्म दिया। परन्तु रंग-मंच के संचालकों के ऊपर पैसे की खूब बारिश हुई। समाज में फैलने वाली गंदगी की ओर उनकी दृष्टि पैसे की आय ने न जाने दी। पारसी कम्पनियों के मालिकों ने इस गन्दे नाटक-साहित्य के विकास को प्रोत्साहन दिया। इन कम्पनियों ने भारतीय जनता की रुचि को देखकर धार्मिक नाटकों को भी अपने रंग-मंच पर स्थान दिया और उन से भी पैसा कमाया। इस प्रकार के नाटकों को हिन्दू और मुसलमानी परिवारों ने प्रोत्साहन प्रदान किया। समाज सुधार के नाटक पारसी कम्पनियों द्वारा नहीं खेले जा सकते थे क्योंकि ये कम्पनियाँ तो भारतीय समाज में स्वयं ही कुरीतियाँ फैलाने की दिशा में अग्रसर थीं।

पारसी कम्पनियों के लिए लिखने वालों में **नारायण प्रसाद बेताब, आग़ाहश्र काश्मीरी, तुलसीदत्त शैदा** इत्यादि उल्लेखनीय हैं। भारतेन्दु के बाद मौलिक नाटक-रचना की ओर साहित्यकारों की प्रवृत्ति कुछ कम दिखाई देती है। **पंडित बदरीनाथ भट्ट** ने 'दुर्गावती', 'चन्द्रगुप्त' इत्यादि, माधव शुक्ल ने 'महाभारत', **मिश्र बन्धुओं** ने 'नेत्रोन्मीलन' इत्यादि नाटक लिखे। **बदरीनारायण** भट्ट का 'चुंगी के उम्मीदवार' प्रहसन भी इसी काल में लिखा गया। 'विवाह-विज्ञापन', 'लबड़ धौं-धौं', भी आपके सुन्दर प्रहसन हैं। **सुदर्शन** का 'आनरेरी मजिस्ट्रेट' भी तभी लिखा गया। इसी समय राधेश्याम कथावाचक और पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र' ने भी प्रहसन लिखे। 'उग्र' जी ने 'उज़बक' प्रहसन इसी समय लिखा।

इस प्रकार नाटक-साहित्य की प्रगति हो रही थी, परन्तु भारतेन्दु

के समान प्रतिभाशाली लेखक अभी तक दूसरा नहीं आया था। समय बदल रहा था। अंग्रेजी और बंगला का प्रभाव पूरे वेग से हिन्दी नाटक-साहित्य पर छाता चला जा रहा था। संस्कृत-काल में नाटक काव्य की साधना का माध्यम था, परन्तु नवीन युग ने उसे गद्य का माध्यम बना लिया। काव्य में रसपरिपाक की परिस्थिति और साधनों के साथ रचना को सामंजस्य स्थापित करना होता था, परन्तु गद्य के लिए इसकी आवश्यकता नहीं रही। यहाँ तो समाज के जीवन का दर्पण प्रस्तुत किया जाता है, समाज के संघर्षो को चित्रित किया जाता है। मानव के विकास की कहानी, उसके जीवन की आवश्यकताएँ, उसके राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक और धार्मिक सम्बन्ध,—इन्हीं की पृष्ठभूमि पर हिन्दी नाटक-साहित्य की भी रचना होनी आवश्यक थी। मानव के चरित्र का चित्रण करना ही इसका प्रधान विषय बनता जा रहा था।

मानसिक अन्तर्द्वन्द्वों और सामाजिक विषमताओं का भी इसमें उद्‌घाटन था।

प्राचीन नाट्य-शास्त्र के कड़े सिद्धान्तों और बन्धनों से नाटक अपने को मुक्त करता जा रहा था। नान्दी, मंगलाचरण, इत्यादि से तो **भारतेन्दु** जी ने भी अपने कई नाटकों को मुक्त रखा है, परन्तु इनसे एकदम मुक्त वह नहीं हुए, होना भी नहीं चाहते थे। प्राचीन के प्रति युग-युग के संघर्षो, उपयोगों और परम्पराओं के प्रति लोभ था उनका, ममता थी उनकी।

अंग्रेजी और बंगला के प्रभाव में आकर अपने नाटक-साहित्य की परम्परा को एक दम खो बैठने की सोचने वाले अधिक स्वतंत्रावादी विदेशी प्रवृत्तियों से समझौता करके भी नाटक-साहित्य का कोई रूप खड़ा न कर सके और उनका साहित्य भी साहित्य की कसौटी पर घिसा जाने पर अपना स्थान न बना सका। इसका प्रधान कारण यही था कि उनमें समय और साहित्य की प्रेरणा से अधिक पैसे की प्रेरणा थी। समाज के ऊपरी मनोरंजन के रूप तक ही उनकी दृष्टि जा सकी,

समाज के अन्दर गलने और सड़ने वाले घावों तक उनकी दृष्टि जानी असम्भव थी।

इसी समय हिन्दी-साहित्य में उस कलाकार का प्रादुर्भाव हुआ जो केवल नाटककार ही नहीं था वरन् एक विचारक, भावुक कवि और कहानी तथा उपन्यासकार भी था। साहित्य की सभी धाराओं में उसने प्रतिभासम्पन्न रचनाएँ प्रदान कीं, गद्य साहित्य की हर दिशा को गति दी, साहित्य दिया, बल दिया। यह कलाकार था **जयशंकर 'प्रसाद'**।

जयशंकर 'प्रसाद'—नाटककार जयशंकर 'प्रसाद' हमारे सामने विशेष रूप से ऐतिहासिक साहित्य के सृजनकर्त्ता के रूप में आते हैं। 'जनमेजय का नागयज्ञ' पौराणिक तथा 'कामना' एक भाव-नाट्य की रचना भी आपने की।

इतिहास की पृष्ठभूमि पर नाटक-रचना करने में कथा की सुगमता तो रहती है, परन्तु उसमें कला का निर्वाह करना कठिन समस्या भी है। केवल खोजपूर्ण नाटक या उपन्यास के रूप में ऐतिहासिक कथा कह देना साहित्य की सृष्टि नहीं। इतिहास के आधार पर साहित्यकार वर्तमान को उभार कर प्राचीन से मिलाता है, राष्ट्र को साहस प्रदान करता है। बंगाल में इसी समय द्विजेन्द्रलाल राय ने मुग़लकालीन नाटकों की रचना करके राष्ट्रीय जागरण की चेतना को आगे बढ़ाया। राय के नाटकों में भारतीय नाट्य-शास्त्र के बंधन नहीं थे, उनका प्रभाव 'प्रसाद' की नाटक-शैली पर भी पड़ा। 'प्रसाद' के नाटक, शैली की दृष्टि से, भारतेन्दु जी के नाटकों से बहुत आगे बढ़ गये। आपने अंग्रेजी और बंगला की ही तरह नाट्य-शास्त्र के रूढ़िवादी व्यवधानों से अपने नाटक-साहित्य और रंग-मंच को मुक्त कर लिया।

जयशकर 'प्रसाद' ने सर्वप्रथम नाटक-साहित्य को धार्मिक और पौराणिक क्षेत्र से निकाल कर विशुद्ध साहित्यिक और सामाजिक कला का रूप प्रदान किया। 'राजश्री' आपका प्रथम ऐतिहासिक नाटक है।

'**राजश्री**' की कथा के साथ इसमें हर्षकालीन भारत की दशा को भी नाटककार ने उभारा है। चीनी यात्री ह्वानसांग तक को पात्र बना लिया है। दूसरा नाटक '**विशाख**' है, जिसकी कथा-वस्तु की आधार काश्मीरी इतिहासकार कल्हण कृत '**राजतरंगिणी**' है। तीसरा नाटक '**अजातशत्रु**' है। अजातशत्रु का चरित्र उदार, गंभीर और उच्छृंखल भी है। यह 'प्रसाद' का बहुत सुन्दर नाटक है, जिसमें पात्रों के चरित्रों का सुन्दर विकास दिखाई देता है। 'प्रसाद' का चौथा नाटक '**चन्द्रगुप्त**' है। यह आपका सबसे बड़ा नाटक है। इस नाटक की रचना यूनानी आक्रमण और मौर्य राज्य के संस्थापन-काल की पृष्ठभूमि पर हुई है। मौर्य लोगों को आपने शूद्र न मानकर पिप्पिली कानन के क्षत्रिय माना है। चन्द्रगुप्त ने सेल्यूकस को पराजित करके भारत के राष्ट्रीय गौरव को उत्थान प्रदान किया है। 'चन्द्रगुप्त' को लेकर संस्कृत के 'मुद्रा-राक्षस' नाटक की भी रचना हुई है और बंगाल में द्विजेन्द्रलाल राय ने भी एक नाटक लिखा है, परन्तु जैसा जटिल कथावस्तु 'प्रसाद' का है वैसा उनका नहीं। चाणक्य और चन्द्रगुप्त दोनों का सुन्दर चरित्र-चित्रण है। 'स्कन्दगुप्त विक्रमादित्य' आपका पाँचवाँ नाटक है। इसके नायक स्कन्दगुप्त विक्रमादित्य का शौर्यपूर्ण चित्रण इस नाटक में किया गया है। यह हूणों के आक्रमणों से जूझते-जूझते मिट जाने वाला गुप्त-वंश की अंतिम विभूति है। 'प्रसाद' जी का मत है कि कालिदास इन्हीं के राज्य-कवि थे। 'प्रसाद' ने स्कन्दगुप्त का आदर्श चरित्र-चित्रण किया है। विजया और देवसेना के चरित्र भी निखर कर सामने आये हैं। यह आपका सबसे श्रेष्ठ नाटक माना जाता है। आपका अंतिम ऐतिहासक नाटक 'ध्रुवस्वामिनी' है। प्रसाद ने 'ध्रुवस्वामिनी' जो रामगुप्त की पत्नी थी, उसका विवाह चन्द्रगुप्त द्वितीय से कराकर, उस काल में भी विधवा-विवाह होते थे, यह साबित करने का प्रयास किया है। ध्रुवस्वामिनी का चरित्र-चित्रण बहुत सुन्दर हुआ है।

'जनमेजय का नाग-यज्ञ' में पौराणिक कथा के आधार पर 'आर्य

और नाग' जातियों के संघर्ष का चित्रण है। अर्जुन-पौत्र परीक्षित को तक्षक नाग द्वारा काटे जाने पर उनका पुत्र जनमेजय नाग-कुल को नष्ट करने का प्रण करता है। जनमेजय और तक्षक दोनों को अपनी जाति की सभ्यता पर नाज़ है। अन्त में दोनों का मेल होता है और नाग-पुत्री मणिमाला से जनमेजय का विवाह होता है। सुन्दर पौराणिक नाटक है। 'कामना' जिसका विकास प्रकृति के स्वच्छ अंचल में होता है लालसा और विकास में पड़कर कैसे पतन को प्राप्त होती है, इस भाव से पूर्ण 'कामना' भाव-नाट्य की 'प्रसाद' ने सृष्टि की है।

'प्रसाद' के नाटकों की रचना ने हिन्दी गद्य-साहित्य को जो रूप प्रदान किया वह भाषा की दृष्टि से तत्सम शब्द-प्रधान था। आम लोगों की बोल-चाल की भाषा में उनकी साहित्य-रचना नहीं हुई। आम जनता के मनोरंजक झुकाव को पारसी रंग-मंच ने जो रूप दिया था उसके साथ 'प्रसाद' का सामंजस्य असम्भव था। साहित्य का इतिहास और विज्ञान के आलोक में जो सांस्कृतिक विकास सम्भव था वहीं तक 'प्रसाद' ने अपने को सीमित रखा। इसीलिए विचार तथा भाषा की दृष्टि से उनकी रचनाएँ क्लिष्ट हो गईं। यह क्लिष्ट होना जहाँ उनके साहित्य के परिमार्जन में सहायक हुआ, उसे एकरूपता प्रदान की, साहित्यकारों में सम्मान का आसन दिया, वहाँ आम भाषा-विज्ञों के लिए वह पठन-पाठन की वस्तु न बन सका। इससे उसके प्रसार में भी बाधा उत्पन्न हुई। परन्तु शिक्षा के प्रसार और विद्यालयों में हिन्दी के प्रसार के साथ-साथ आपके साहित्य का जितना पठन-पाठन आज तक हुआ और हो रहा है, उतना अन्य किसी हिन्दी-लेखक के साहित्य का नहीं हुआ।

'प्रसाद' के पश्चात् हिन्दी में बहुत से प्रतिभासम्पन्न नाटककारों ने जन्म लिया। **प्रेमचन्द** ने 'कर्बला', **सुदर्शन** ने 'अंजना', **बेचन शर्मा उग्र** ने 'महात्मा ईसा', **लक्ष्मीनारायण मिश्र** ने 'राक्षक का मंदिर', 'मुक्ति का हास', 'राजयोग', 'सिंदूर की होली', **माखन लाल चतुर्वेदी** ने 'कृष्णार्जुन

युद्ध' की रचनाएँ कीं। 'प्रसाद' के बाद के नाटककारों में लक्ष्मीनारायण मिश्र का अपना विशेष स्थान है।

लक्ष्मीनारायण मिश्र—आपने ऐतिहासिक नाटक लिखते समय कल्पना से अधिक काम लिया है। इसे आपके ऐतिहासिक ज्ञान की कमी मानना ग़लत है। आपने ऐतिहासिक और सामाजिक, दोनों प्रकार के सफल नाटक लिखे है। सामाजिक नाटकों में मानव-जीवन की समस्याओं को लेकर मनोवैज्ञानिक चित्रण प्रस्तुत किये हैं।

इसी काल में **जगन्नाथ प्रसाद 'मिलिन्द'** ने 'प्रताप-प्रतिज्ञा', **गोविन्द वल्लभ पंत** ने 'वर माला', 'राजमुकुट', 'अंगूर की बेटी' नाटक लिखे। **सुमित्रानन्दन पंत** ने 'ज्योत्सना', भाव-रूपक लिखा। **वृन्दावनलाल वर्मा** ने 'बाँस की फाँस', 'फूलों की बोली', 'हंस-मयूर', 'रानी लक्ष्मीबाई, नाटक लिखे। **सेठ गोविन्ददास** ने 'कर्तव्य','प्रकाश', 'हर्ष', 'स्पर्धा' इत्यादि नाटकों की रचना की। **उदयशंकर भट्ट** ने 'मत्स्यगन्धा', 'सागर-विजय', 'अम्बा' और 'अदिम युग' पौराणिक नाटक लिखे। **रामनरेश त्रिपाठी** ने 'जयन्त', और 'प्रेमलोक' नाटकों की रचना की। **चतुरसेन शास्त्री** ने 'अमर राठौर' और 'उत्सर्ग' लिखे। **हरिकृष्ण प्रेमी** ने 'स्वर्ण-विहान', 'रक्षा-बन्धन', 'शिवा साधना', 'प्रतिशोध' इत्यादि नाटकों की रचना की। आप के नाटक मध्यकालीन पृष्ठभूमि पर लिखे गये हैं।

उक्त नाटककारों में **लक्ष्मीनारायण मिश्र** के पश्चात् उदयशंकर भट्ट और **हरिकृष्ण प्रेमी** के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। उदय शंकर भट्ट के नाटकों के विषय पौराणिक हैं। भाषा के क्षेत्र में भी आप ने 'प्रसाद' का अनुगामी बनने का प्रयास किया है। हरिकृष्ण प्रेमी के नाटकों ने उक्त सभी नाटककारों की रचनाओं से अधिक ख्याति प्राप्त की है। आपके नाटकों में राष्ट्रीयता, सामाजिकता और मानवता तीनों का सामंजस्य करके कथानकों को निभाया गया है। राष्ट्र के जीवन का संघर्ष आपकी रचनाओं से मुखरित होता है। जन-जिज्ञासा और विद्या-

लयों की आवश्यकता, दोनों की पूर्ति आपके नाटकों से हुई। 'रक्षा-बन्धन' की प्रसिद्धि सब से अधिक हुई। आपके नाटक रंग-मंच की दृष्टि से भी सर्वोत्तम हैं।

हिन्दी नाटक-साहित्य के अंतिम विकास मे उपेन्द्र नाथ अश्क और जगदीशचन्द्र माथुर के नाम लिये जा सकते है।

इस काल में जहाँ एक ओर मौलिक साहित्य की रचना हो रही है वहाँ दूसरी ओर अन्य भाषाओं के अनुदित नाटकों का भी हिन्दी-गद्य साहित्य में प्रसार हुआ। **रामचन्द्र वर्मा** ने 'द्विजेन्द्रलाल राय' के नाटकों का अनुवाद किया। **रूपनारायण पाण्डेय** ने भी द्विजेन्द्र के नाटकों का अनुवाद किया। **रवीन्द्र ठाकुर** के नाटकों का भी हिन्दी में अनुवाद हुआ। इस काल में अंग्रेजी के नाटकों की तरफ लेखकों की दृष्टि अधिक नहीं गई।

उक्त नाटक-साहित्य पर दृष्टि डालने के पश्चात् यह बात स्पष्ट हो जाती है कि नाटक साहित्य को जो मोड़ 'प्रसाद' ने प्रदान किया उसी की ओर आगे आने वाले नाटककारों का विशेष झुकाव रहा। नाटकों के कथानकों से धीरे-धीरे पौराणिकता और धार्मिकता का लोप तथा सामाजिकता और साहित्यकता का विकास मिलता है। इन नाटकों में ऐतिहासिकता का भी प्राधान्य रहा है। मध्य-कालीन इतिहास से खोज-खोजकर ऐसे कथानकों पर रचनाएँ हुई कि जो इस राष्ट्रीय उत्थान के युग में हिन्दू और मुसलमानों के बीच खुदी हुई उस गहरी खाई को, जिसके दोनों किनारों को अंग्रेजी सरकार न मिलने देने के लिए मजबूती से पकड़े बैठी थी, पारस्परिक प्रेम और मानवता से पाट देने का ही नहीं, भर देने का प्रयास किया। 'प्रेमी' जी का 'रक्षा-बन्धन' इसी प्रकार का नाटक है।

पारसी रंग-मंच की उसी ढंग के सिनेमा-रंग-मंच ने इतिश्री कर दी। इसके पश्चात् रंग-मंच केवल कहीं-कहीं शिक्षा-संस्थाओं में ही रह गया और उसका जनता से सम्पर्क टूट गया। परन्तु इधर भारतीय स्वतन्त्रता

के पश्चात् सरकार ने कला के विभिन्न अंगों के विकास की ओर ध्यान दिया है। इसके फलस्वरूप जहाँ एक ओर संगीत और नृत्य-कला का विकास हुआ है वहाँ 'एमेच्योर' नाटक-मंच भी स्थापित हुए हैं और उन पर सुन्दर सामाजिक नाटक खेले गये हैं। 'पृथ्वी थ्येटर' ने इस दिशा में महत्वपूर्ण कार्य किया है। रंग-मंच की ओर आज काफी नाटक-प्रेमी कलाकारों की दृष्टि है और उसके विकास तथा प्रसार-कार्य में संचालक, अभिनेता तथा लेखक सभी गतिशील हैं।

आज का नाटक-साहित्य 'प्रसाद' की केवल पठनीय भाषा से आगे बढ़कर आम बोल-चाल की भाषा को अपना रहा है। जनता से सम्पर्क स्थापित करने की ओर भी उसकी गति है। नाटक के विषय और पात्रों के समाज की दृष्टि से भी लेखक-वर्ग उन्हीं को लेना पसंद करता है जिनसे यथार्थ-चित्रण सामने आये। केवल कल्पना और पौराणिक उड़ानों का जमाना धीरे-धीरे वैज्ञानिक विकास के प्रकाश में लुप्त सा होता जा रहा है।

•

: ४ :

एकांकी नाटक-साहित्य का विकास

भारतीय नाट्य-शास्त्र में कई रूपकों और उपरूपकों का आकार-प्रकार वर्तमान एकांकी-नाटक से बहुत भिन्न नहीं ठहरता। **वीथी, प्रहसन, अंक, भाण** इत्यादि इसी प्रकार के रूपक हैं। भारतेन्दु ने जो एकांकी नाटकों की रचना की, उनका आकार भारतीय रूपकों की परिपाटी के अनुसार ही किया। 'भारत-दुर्दशा', 'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति', 'अंधेरनगरी' इत्यादि नाटक इसी कोटि में रखे जायेंगे। भारतेन्दु के पश्चात् आने वाले नाटककार **प्रतापनारायण मिश्र, प्रेमघन, श्रीनिवास दास, राधाचरण गोस्वामी** इत्यादि की एकांकी-रचनाएँ भी रूपकों के एकांकी स्वरूपों के ही प्रकार की हैं। इन पर कला और विषय की दृष्टि से आधुनिकता की छाप दिखाई नहीं देती। वे अपने युग के प्रतीक हैं। उनके युग की सामाजिक अवस्था का उनमें चित्रण है।

आज के युग में लिखे जाने वाले एकांकी नाटक ने कला की दृष्टि से प्राचीन एकांकी-साहित्य से अपना बिलकुल सम्बन्ध विच्छेद-सा कर लिया है। इसके गठन पर पूर्णरूपेण पाश्चात्य प्रभाव प्रतिलक्षित होता है। इब्सन और बर्नार्डशॉ के नाटकों का पठन-पाठन अंग्रेजी भाषा के माध्यम द्वारा भारत में हुआ और उसका प्रभाव हिन्दी नाटक-शैली पर भी हुआ। भारतेन्दु कालीन नाटक संस्कृत-शैली और कथावस्तुओं से बहुत कम अपने को आगे बढ़ा पाये। 'प्रसाद' ने उस प्रगति को और विकासोन्मुख बनाया तथा नाटक के कला-पक्ष, यानी गुण की दृष्टि से शास्त्रीय बन्धनों को और मुक्त कर दिया।

इस प्रकार नाटक-साहित्य भी प्रगति के पथ पर अग्रसर हुआ। कला के क्षेत्र में उसने योरोपीयन ढंग को अपनाया और विषयों के क्षेत्र में

भारतीय चेतना और सामाजिक समस्याओं को लेकर अपना महत्वपूर्ण विकास किया।

भारतेन्दु, उनके समाकालीन नाटककार और 'प्रसाद' के हिन्दी एकांकी नाटक-साहित्य की दिशा मे सुदर्शन, गोविन्द वल्लभ पंत, भुवनेश्वर, डाक्टर रामकुमार वर्मा, लक्ष्मीनारायण मिश्र, उदयशंकर भट्ट, उपेन्द्र-नाथ अश्क और विष्णु प्रभाकर के नाम उल्लेखनीय हैं। एकांकी नाटक साहित्य के विकास मे आपने महत्वपूर्ण योग दिया है।

भुवनेश्वर—सन् १९३५ में 'कारवाँ' नाम से आपका एकांकी-संग्रह प्रकाशित हुआ। हिन्दी में यह अपने ढंग का एक नवीन प्रयास था। इनके नाटकों पर बर्नाडशॉ का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है। हिन्दी में अपने क्षेत्र में प्रारम्भिक रचना होने से इसका पर्याप्त स्वागत हुआ, परन्तु इसमें न तो मौलिक-साहित्य की अनुभूति ही निखर कर आई और न भारतीय समाज और उसकी समस्याओं का ही विकास तथा सही चित्रां-कन हुआ। यह अनुकरणात्मक प्रवृत्ति मौलिक रूप धारण कर सकती थी परन्तु इसके पश्चात् भुवनेश्वर जी का कोई अन्य कार्य साहित्य-क्षेत्र में नहीं आया।

डा० रामकुमार वर्मा—'पृथ्वीराज की आँखें' आपके एकांकी नाटकों का संग्रह सन् १९३६ ई० में प्रकाशित हुआ। इसके पश्चात् 'रेशमी टाई', 'चारुमित्रा', 'सप्तकिरण', विभूति', 'रिमझिम', 'चार ऐतिहासिक एकांकी', इत्यादि प्रकाशित हुए। वर्मा जी ने ऐतिहासिक और सामाजिक दोनों प्रकार के नाटकों की रचना की है। डा० रामकुमार वर्मा ने सर्वप्रथम हिन्दी-एकांकी नाटक-साहित्य को मनोविश्लेषणात्मक स्तर पर लाकर रखा और नये ढंग से आधुनिकतम कला के साथ चित्रण किया। आपके ऐतिहासिक नाटक सामाजिक नाटकों की अपेक्षा अधिक सफल हुए है। दुःखान्त नाटक आपने अधिक लिखे हैं और उनमें आपको काफ़ी सफलता मिली है।

उपेन्द्रनाथ अश्क—'देवताओं की छाया में' उपेन्द्रनाथ अश्क

का प्रथम एकांकी संग्रह है। उसकी रचना सन् १९३८ में हुई। इसके पश्चात् आपके 'तूफान से पहले', 'कैद और उड़ान', इत्यादि और कई संग्रह निकले। आपने सुखान्त और दुःखान्त दोनों प्रकार के नाटक लिखे हैं। आपके नाटक साधारण कोटि के है, जिनमें डा० रामकुमार के जैसा मनोवैज्ञानिक संघर्षों का चित्रण नहीं है। व्यंग्य-चित्र कुछ अवश्य अच्छे बन पड़े हैं परन्तु उनमें भी उथला-उथलापन ही है। जीवन की गम्भीर पैठ उनमें दिखाई नहीं देती। जीवन के वैषम्य पर कुछ व्यंग्य-चित्र आपने प्रस्तुत किये हैं, परन्तु इन चित्रों में सफाई नहीं आई।

लक्ष्मीनारायण मिश्र—मिश्र जी का स्थान नाटक-साहित्य में 'प्रसाद' के बाद आता है, परन्तु एकांकी नाटक-साहित्य की ओर आपकी गति कुछ देर में हुई। इधर आपके ऐतिहासिक एकांकियों का 'अशोक वन' नाम से संग्रह प्रकाशित हुआ है। मिश्र जी के नाटक विश्लेषण, कला और मार्मिकता की दृष्टि से अग्रगण्य हैं। विचारों के गाम्भीर्य के साथ-ही-साथ विश्लेषण की महान् प्रतिभा इस कलाकार में है। आपके नाटकों की भाषा में न तो अश्क की भाषा जैसा उथलापन ही है और न डा० रामकुमार के जैसी संस्कृत-गर्भित प्रणाली ही। भाषा प्रसाद गुण सम्पन्न है और विषय ऐतिहासिक है, गौरव से पूर्ण हैं।

उदयशंकर भट्ट—'अभिनव एकांकी नाटक', 'धूमशिखा', 'पर्दे के पीछे', 'समस्या का अन्त', 'स्त्री-हृदय' इत्यादि आपके एकांकी नाटक-संग्रह हैं। आपने पौराणिक और सामाजिक विषयों पर एकांकी नाटकों की रचना की है। अधिकतर आपके नाटक दुःखान्त ही हैं। भावना-प्रधान नाटक हैं, विचार का अंश उनमें बहुत कम है। अन्तर्द्वन्द्वों का भी स्वाभाविक स्पष्टीकरण है। भावात्मकता होने से कहीं-कहीं पर चित्रण मार्मिक हो गया है। भाषा सुसंस्कृत है।

विष्णु प्रभाकर—इधर के एकांकी नाटककारों में विष्णु प्रभाकर ने विशेष प्रगति की है और ख्याति भी उन्हें मिली है। 'इन्सान', 'क्या वह दोषी था' आपके एकांकी-संग्रह हैं। इनमें रेडियो-रूपक भी सम्मि-

लित हैं। वास्तव में आपको एकांकी नाटक-रचना से अधिक रेडियो रूपकों की रचना में सफलता मिली है। समाज के व्यंग्यपूर्ण चित्रों के आधार पर आपने अपने नाटकों की कथावस्तु का गठन किया है। सामाजिक रूढ़ियों का खंडन आपने किया।

आज के समाज में एकांकी-नाटकों को विशेप रूप से अपनाया जा रहा है। स्कूल और कालिजों की सभा-सोसायटियों ने अपने-अपने मंच तैयार कराये है और उनपर एकांकी नाटकों की खेलने की प्रथा दिन पर दिन वेग के साथ आगे बढ़ रही है। इन मंचों पर खेलने के लिए आधुनिकतम एकांकी नाटकों की आवश्यकता है। हिन्दी के एकांकी नाटककारों ने इस अल्पकाल में जो प्रगति की है वह प्रशंसनीय है। साहित्य की इस धारा का भविष्य बहुत ही उज्ज्वल प्रतीत होता है।

: ५ :

उपन्यास-साहित्य का विकास

उपन्यास-लेखन की ओर हिन्दी-साहित्य का झुकाव किसी सांस्कृतिक प्रेरणा के फलस्वरूप स्थापित करना, या इसके रूपों को संस्कृत के पौराणिक आख्यानों से जोड़ना नितांत गलत है। उपन्यास-कला और साहित्य का विकास पश्चिमी देशों में ही हुआ।

गद्य के विकास के साथ-साथ उसके रूपों में भी वृद्धि हुई। गद्य का विकास क्योंकि पहले पश्चिमी देशों में हुआ, इस लिए गद्य के रूपों का भी अधिकाधिक विकास पहले वहीं पर होना सम्भव था। साहित्य कविता के क्षेत्र को छोड़कर गद्य के क्षेत्र में पदार्पण कर रहा था। इसलिए गद्य में भी कम-से-कम पद्य के वे रूप तो आने आवश्यक ही थे जिनके माध्यम द्वारा मानव और प्रकृति के स्वभावों का विचारात्मक तथा भावात्मक चित्रण और स्पष्टीकरण पद्य के माध्यम द्वारा हो रहा था।

प्रवृत्ति स्वच्छन्दता की ओर थी। साहित्य अपने प्रवाह के लिये व्यापक-से-व्यापक और मुक्त-से-मुक्त राह खोज रहा था। पद्य में महाकाव्य से व्यापक पास मानव और प्रकृति के चित्रण के लिए अन्य नहीं था। उसी के रूप को लेकर गद्य के माध्यम द्वारा जो साहित्य की रचना हुई उसका रूप उपन्यास बना। उपन्यास के विकास का महाकाव्य से परम्परागत सम्बन्ध है और यह सम्बन्ध न्यूनाधिक रूप में विश्व की सभी भाषाओं में मिलता है।

उपन्यास-साहित्य अपने वर्तमान रूप में आने से पूर्व कई मंजिलें पार कर चुका है। ये मंजिलें जिन कलाकारों की प्रतिभासम्पन्न रचनाओं के फल-स्वरूप तै हुईं, हिन्दी उपन्यास-साहित्य का विकास देखने से पूर्व

उनका संक्षिप्त परिचय प्राप्त कर लेना भी अनावश्यक न होगा। इटली के **बोकेशियो**, फ्रांस के **रेबेले** और स्पेन के **सरवान्ते** के नाम उपन्यास-साहित्य के प्रथम विकास में उल्लेखनीय हैं। **बोकेशियो** ने विनोदपूर्ण रचनाएँ कीं और **रेबेले** ने यथार्थवादी दृष्टिकोण अपनाया।

अंग्रेजी-उपन्यास साहित्य ने इसी विकास-क्रम की धारा को आगे बढ़ाया। सोलहवीं शताब्दी के अन्त तक इंग्लैंड मे **फिलिप सिडनी, जान बनियन** और **डेनियल डिफ़ो** के उपन्यास प्रकाशित हो चुके थे। अंग्रेजी ने विश्व-उपन्यास-साहित्य के विकास में महत्वपूर्ण योग दिया। अठारहवी और उन्नीसवीं शताब्दी में **सेम्युअल रिचर्डसन, हेनरी फील्डिंग, आलिवर गोल्डस्मिथ, सर वाल्टर स्काट, चार्ल्स डिकेन्स, थेकरे, जार्ज इलियट, सॉमरसेट मॉम,** और **ग्राहम ग्रीन** जैसी प्रतिभाओं ने अंग्रेजी उपन्यास-साहित्य को अपनी-अपनी विशेष प्रतिभाओं के फलस्वरूप कई रूप दिये। किसी ने अपने साहित्य में मनोविश्लेषण की विशेषता रखी है तो किसी ने सामाजिक व्यंग्यों से पूर्ण रचनाएँ प्रदान की हैं। किसी ने चरित्र-चित्रण पर विशेष बल दिया है तो किसी ने समस्याओं पर अपनी प्रतिभा को केन्द्रित किया है।

इसी समय फ्रांस में भी उपन्यास-साहित्य का कम विकास नहीं हुआ। **वल्तेयर, विक्टर ह्यूगो, बाल्ज़क, जोला फ्लाबेयर, अनातोल फ्रांस** इत्यादि के नाम उल्लेखनीय हैं। जर्मनी में **गेटे** तथा रूस में **पुश्किन, गोगोल तुर्गनेव,** और **टाल्सटाय** जैसी विभूतियों ने जन्म लेकर उपन्यास-साहित्य को आगे बढ़ाया है।

इस काल में उपन्यास-साहित्य का जो विकास हुआ उसे यदि युग-चेतना के विकास के प्रकाश में पढ़ने का प्रयास किया जाय तो उपन्यास का मूल रूप सामने आता है। देखना चाहिए कि शैली और कला से पृथक रचना में क्या है? क्या रचना में पाठक का मनोरंजन ही है या राष्ट्रों के ऐतिहासिक उत्थान और पतन की रोचक और आकर्षक कहानियाँ हैं?

यथार्थ और कल्पना का सामंजस्य है ? क्या मानव और प्रकृति का कलात्मक चित्रण है ? मनुष्य के सुन्दर सामाजिक चित्रों का कोष है ? समाज की समस्याओं का स्पष्टीकरण है ? कहानी है इन्सान के जीवन की। ऐसे जीवन की जो राष्ट्र के जीवन का प्रतीक हो।

हिन्दी-उपन्यास को प्राचीनता का महत्व प्रदान करने के लिए 'पंचतन्त्र' 'हितोपदेश', 'बेताल पच्चीसी', 'कथा सरित सागर', 'वृहत् कथा-मंजरी', 'हर्ष चरित', 'कादम्बरी' इत्यादि के नामोल्लेख किये जा सकते हैं, परन्तु वर्तमान उपन्यास के विकास पर कला के रूप में योरोप का ही प्रभाव है।

बंगला-साहित्य हिन्दी से पहले अंग्रेजी के माध्यम द्वारा उपन्यास-साहित्य के सम्पर्क में आया। इसीलिए बंगला में हिन्दी से पहले उपन्यास-साहित्य का विकास हुआ। हिन्दी-उपन्यास-साहित्य पर बंगला और अंग्रेजी उपन्यास-साहित्य का प्रभाव पड़ा। हिन्दी में भी मौलिक उपन्यास लिखने की प्रवृत्ति जाग्रत हुई और साथ-ही-साथ अनुवादों का भी सिलसिला जारी हुआ।

उपन्यासों के अनुवाद-कार्य की प्रवृत्ति हमें भारतेन्दु-काल से ही मिलती है, स्वयं भारतेन्दु जी ने भी एक उपन्यास का अनुवाद किया था। सं० १६४७ में **रामकृष्ण वर्मा** ने अंग्रेजी से 'पुलिस-वृत्तांत-माला' और सं० १६४६ में 'ठग वृत्तान्त माला' का अनुवाद किया। बंगला से 'चित्तौर-चातकी' अनुवाद सं० १६५२ में हुआ। सं० १६५३ में **बाबू कार्तिक प्रसाद खत्री** ने 'इला' और 'प्रमीला' का अनुवाद किया। इन महानुभावों की भाषा काफ़ी परिमार्जित रूप में सामने आई। यदि अधिक चटपटापन नहीं था तो अरबी-फारसी के शब्दों का बाहुल्य भी उतना नहीं था। **गोपालराम 'गहमरी' जी** के सं० १६५८ से पूर्व 'चतुर-चंचला' और 'भानमती', इत्यादि बंगला के अनुवाद सामने आये। 'नये बाबू' की रचना सं० १६५१ में हुई। इसके पश्चात् 'देवरानी जेठानी', 'दो बहिन', 'तीन पतोहू', 'सात पतोहू' इत्यादि रचनाएँ प्रकाशित हुईं। आपकी

भाषा कुछ वक्रता लिए हुए होती थी और उसमें चटपटापन भी था। इस काल में बंगला के प्रमुख उपन्यासकार **बंकिम, रमेशचन्द्र दत्त, चण्डी चरण सेन, शरत, चारूदत्त** इत्यादि बंगला के ख्यातिप्राप्त उपन्यासकारों की प्रमुख रचनाओं के अनुवाद हो चुके थे। **रवि बाबू** की 'आँख की किरकिरी' का अनुपाद इन्हीं दिनों हुआ। इस अनुवाद कार्य में प्रधान योग **पं० ईश्वरी प्रसाद शर्मा** और **रूप नारायण पाण्डेय** ने दिया। बंगला के अतिरिक्त उर्दू, मराठी और गुजराती के अनुवाद भी हिन्दी मे प्रकाशित हुए। **बाबू रामचन्द्र वर्मा** ने इन्ही दिनों मराठी से 'छत्रसाल' नायक सुन्दर उपन्यास का अनुवाद किया। अंग्रेजी के उपन्यासों के इस काल में कम अनुवाद हुए। रेनल्ड कृत 'लन्दन रहस्य' का अनुवाद इसी समय हुआ और 'टाम काका की कुटिया' का भी। इस प्रकार उपन्यासों के अनुवाद-क्षेत्र में भी महत्वपूर्ण कार्य हुआ।

अनुवादों के साथ-ही-साथ मौलिक उपन्यास-लेखन की ओर भी प्रतिभासम्पन्न कलाकारों का ध्यान गया। मौलिक उपन्यास लेखन का कार्य भी भारतेन्दु-काल से ही प्रारम्भ होता है। भारतेन्दु जी ने स्वयं एक उपन्यास लिखना प्रारम्भ किया था, परन्तु आप उसे पूरा न कर सके। 'परीक्षा गुरु' हिन्दी का प्रथम मौलिक उपन्यास है। इसकी रचना सन् १८८२ में **लाला श्रीनिवासदास** ने की। सन् १८८३ में **रत्नचन्द्र** ने 'नूतन चरित्र' लिखा, सन् १८८६ में **बालकृष्ण भट्ट** ने 'नूतन ब्रह्मचारी' तथा 'सौ अजान और एक सुजान' लिखे. सन् १८९० में **राधा कृष्णदास** ने 'निस्सहाय हिन्दू' की रचना की, **कार्तिक प्रसाद खत्री** ने सन् १८९६ में 'जया' लिखा, **किशोरीलाल गोस्वामी** ने 'लवंगलता' तथा 'कुसुमकुमारी' की रचना की। **राधाचरण गोस्वामी** और **देवीप्रसाद शर्मा** ने 'विधवा-विपत्ति' की रचना की। **बालमुकुन्द गुप्त** ने 'कामिनी' लिखा, **गोपालराम 'गहमरी'** ने सन् १८९४ में 'नये बाबू' और सन् १८९८ में 'सात पतोहू' और 'बड़ा भाई' की रचना की।

उक्त उपन्यासों की नामावली को देखने से स्पष्ट हो जाता है कि इनमें

आचार-विचार, धर्म, नीति, सामाजिकता और ऐतिहासिकता पर प्रधान रूप से लेखकों का ध्यान गया है। इनमे उपदेशात्मकता अधिक है और मनोरंजन बहुत कम। मनोरंजन की दिशाओं में तिलस्म और ऐयारी के उपन्यासों की रचना हुई। **देवकीनंदन खत्री** ने इस धारा को हिन्दी साहित्य में सर्वप्रथम प्रवाहित किया। सन् १८९१ में आपने 'चन्द्रकान्ता' और 'चन्द्रकान्ता-संतति' की रचना की। इनमें रोमांचकारी घटनाओं और तिलस्म तथा ऐयारी का भण्डार है। लोकप्रियता की दृष्टि से इस काल में जो व्यापकता इन्हें मिली वह अन्य किसी को नही मिली। इन्हें पढने के लिए हिन्दी न जानने वालों को हिन्दी पढ़नी पड़ी। इससे पूर्व भी आप 'नरेन्द्रमोहिनी', 'कुसुम कुमारी' तथा 'वीरेन्द्र वीर' इत्यादि उपन्यासों की रचना कर चुके थे। आपकी भाषा 'आम फ़हम' थी और उपन्यासों की रचना में आपने घटना-वैचित्र्य पर ही विशेष ध्यान दिया है, रस-संचार चरित्र-चित्रण तथा भावानुभूति पर नही।

देवकीनंदन खत्री के प्रभाव से तिलस्म और ऐयारी के उपन्यासों की हिन्दी में और भी रचनाएँ आईं। **हरिकृष्ण जौहर** ने कई उपन्यास लिखे। **देवीप्रसाद शर्मा, जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदी, बाल मुकुन्द वर्मा, विश्वेश्वर प्रसाद** तथा **रामलाल वर्मा** इत्यादि ने भी इस धारा में अपनी रचनाओं का योग दिया। परन्तु यह धारा हिन्दी-गद्य-साहित्य की सम्मानित साहित्यिक-धारा का रूप ग्रहण न कर सकी। मनोरंजन के क्षेत्र में इसका प्रचलन और प्रसार तो आगे बढ़ा और आज तक भी यह धारा हिन्दी-गद्य में बराबर चल रही है, परन्तु उच्चकोटि के साहित्य के अंतर्गत इसकी स्थापना असम्भव है।

तिलस्म और ऐयारी के साथ समाज को लक्ष्य बना कर लिखने वाले **पंडित किशोरीलाल गोस्वामी** ने भी इसी काल में उपन्यासों की रचना की। समाज के सजीव चित्र तथा चित्राकर्षक वर्णन-शैली मे आपने जो रचनाएँ कीं वे उपन्यास-साहित्य को थोड़ा और आगे ले आने में समर्थ हुईं। उनमें चरित्र-चित्रण की दिशा में भी लेखक का प्रयास मिलता है।

आपने संवत् १९५५ में 'उपन्यास' पत्र प्रकाशित किया। हिन्दी-साहित्य के आप पहले लेखक हैं जिन्होंने अपनी रचनाओं का क्षेत्र केवल उपन्यास-रचना तक ही सीमित कर दिया। आपके उपन्यासों का प्रभाव नवयुवकों पर अच्छा नहीं पड़ता क्योंकि उनमें वासना को उत्तेजित करने वाले स्थानों को खूब उभारा गया है।

किशोरीलाल जी का हिन्दी, उर्दू और संस्कृत, तीनों भाषाओं पर समान अधिकार था। आपने सामाजिक और ऐतिहासिक, दोनों प्रकार की रचनाएँ की हैं। 'तारा', 'चपला', 'तरुण तपस्विनी', 'रज़िया बेगम', 'लीलावती', 'राजकुमारी', 'लवंगलता', 'हृदयहारिणी', 'हीराबाई', 'लखनऊ की कब्र' इत्यादि आपकी प्रमुख रचनाएँ है।

इसी समय **गोपालराम 'गहमरी', जयरामदास गुप्त, रुद्रदत्त शर्मा, शेरसिंह, जंगबहादुरसिंह** तथा **चन्द्रशेखर पाठक** ने रोमांचकारी कथानकों के आधार पर रचनाएँ कीं। इनमें भी जासूसीपन और ऐयारी ही विशेष रूप से मिलती है।

सं० १९५६ में 'धूर्त रसिक लाल', सं० १९६१ में 'हिन्दू-गृहस्थ' और 'आदर्श दम्पति', सं० १९६४ में 'बिगड़े का सुधार' उपन्यासों की रचना अयोध्यासिंह उपाध्याय ने की।

उपन्यास-साहित्य इस प्रकार अपना रूप निर्धारित करता चला जा रहा था, अपना आकार बना रहा था और प्रधान रूप से दो धाराओं में विभाजित होता चला जा रहा था, जिनमें एक धारा का प्रवाह सामाजिकता की ओर था और दूसरी बिना लक्ष्य मनोरंजन प्रदान करती थी। मनोरंजन की दिशा में तिलस्म और ऐयारी की रचनाएँ लिखी जा रही थीं और दूसरी दिशा में परिवार, समाज, देश और इतिहास को लेकर रचनाओं की दिशा खुल रही थी। इतिहास की दिशा में अभी तक जो रचनाएँ हुईं उनसे लेखकों के ऐतिहासिक ज्ञान-विकास का पता नहीं चलता। ऐतिहासिक प्रेमाख्यानों मात्र तक ही लेखकों की दृष्टि सीमित

थी। सामाजिकता के क्षेत्र में भी प्रेम ही प्रधान वस्तु थी, जिसके सहारे से रचना का आकार खड़ा किया जाता था। **किशोरीलाल गोस्वामी, विट्ठलदास नागर, श्यामसुन्दर वैद्य, रामप्रताप शर्मा, लालजी सिंह, मथुरा प्रसाद शर्मा, जयरामदास गुप्त, मिट्ठूलाल मिश्र** इत्यादि की रचनाएँ इन्हीं प्रवृत्तियों को लेकर लिखी गईं। इन उपन्यासों को उच्चकोटि की रचनाओं के समकक्ष नहीं रखा जा सकता। **ब्रजनन्दन सहाय** के 'लाल चीन' और **मिश्र बन्धुओं** के 'वीरमणि' उपन्यासों की रचना भी सन् १९१७ तक हो चुकी थी। इन उपन्यासों में इतिहास को आधार बनाने का प्रयास मिलता है।

हिन्दी-उपन्यास-साहित्य के उक्त विकास पर दृष्टि डालने से स्पष्ट हो जाता है कि इस पर अंग्रेजी साहित्य का बहुत कम प्रभाव पड़ा और यह अपनी ही परिस्थितियों में विदेशी साहित्य का केवल बाहरी रूप मात्र देखकर विकसित हो रहा था। इसी समय सन् १९१८ ई० में मुंशी प्रेमचन्द का 'सेवासदन' उपन्यास प्रकाश में आया, जिसने उपन्यास-लेखक की एक नवीन धारा को हिन्दी गद्य-साहित्य में प्रवाहित किया।

देश का सामाजिक जीवन अस्त-व्यस्त था। ज़मींदारी और साहूकारों के बोझ से काश्तकार और गरीब जनता पिसी जा रही थी। अंग्रेजों का शोषण-चक्र देश में चल रहा था। मज़दूरों की दशा बहुत खराब थी। पूँजीवाद देश में पनपता जा रहा था, और इसका विकास सरकार के सहयोग पर आश्रित था। देश के लोगों की आर्थिक दशा और भी खराब होती जा रही थी। स्त्रियों की समाज में दशा अच्छी नहीं थी। नीच जातियों से उच्चवर्ग के लोग अनैतिक व्यवहार करते थे और उनका जीवन पशुओं के जीवन के तुल्य था। देश के शहरों और गाँवों में अशांति का साम्राज्य था। वेश्या-वृत्ति और शराब का प्रचलन बढ़ रहा था। मज़दूरों में शराब और जुए की कुप्रथाओं का विकास होता देखकर सरकार ने उसे अपनी आय का साधन बनाया। पारसी थियेट्रीकल कम्पनियों के साथ-

ही-साथ बड़े-बड़े कार्निवालों का दौर-दौरा देश के सभी शहरों में होना प्रारम्भ हुआ और इस प्रकार देश का वातावरण विदेशी साम्राज्य की छत्र-छाया में विषाक्त हो उठा।

देश के नेताओं ने इसी समय देश मे विभिन्न प्रकार के आन्दोलन प्रारम्भ किये। देश की जनता मे, राष्ट्रीय चेतना, सामाजिक चेतना, शिक्षा की चेतना, नैतिकता की चेतना, मानवता की चेतना का बीजारोपण किया। सुधारकों ने भी स्त्री-सुधार, सामाज-सुधार, हरिजन-आन्दोलन, शराब-विरोध, जुआ-विरोध, विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार इत्यादि दिशाओं में कार्य करना प्रारम्भ किया।

इन कुप्रथाओं और अंग्रेजी दमन-चक्रों की प्रतिक्रिया का रूप हिन्दी-साहित्य मे सर्वप्रथम मुन्शी प्रेमचन्द ने प्रस्तुत किया और उनका उपउपन्यास-साहित्य इसका ज्वलंत उदाहरण है। विद्रोह के इस क्रातिकारी युग में विस्तृत-प्रत्यक्षीकरण, संतुलित विन्यास, सुधार और कला के शक्तिशाली अस्त्र उपन्यास को लेकर मुंशी प्रेमचन्द ने समाज और राष्ट्र की गली-सड़ी कुप्रथाओं और अत्याचारों पर जोरदार आघात किया। आप का उपन्यास-साहित्य लोक की सामयिक परिस्थितियों तक ही सीमित नहीं रहा, वरन् मानव-जीवन की नित्यप्रति की विपमताओं, समस्याओं और कठिनाइयों के अन्दर भी आपने प्रवेश किया और अपना आदर्शोन्मुख यथार्थवादी स्वरूप पाठकों के सम्मुख रखा। आपने उपन्यास-साहित्य को मनोरंजन, तिलस्म, ऐयारी और साधारण प्रेम-लीलाओं के चित्रण से ऊपर उठाकर राष्ट्र, समाज और मानव के जीवन की मीमासा के क्षेत्र में सुशोभित किया। उपन्यास-साहित्य के लक्ष्य को ऊपर उठाया और इसे भावना तथा चिन्तन से अनुप्राणित किया।

बँगला उपन्यास-साहित्य का स्तर पहले ही ऊपर उठ चुका था। हिंदी-उपन्यास-साहित्य का यह उठान हमें मुन्शी प्रेमचन्द के साहित्य मे मिलता है। आगे बढ़ने से पूर्व, यहाँ यह जान लेना आवश्यक है कि

जहाँ बँगला-साहित्य में उपन्यास प्रधानता उच्च वर्ग के पात्रों को लेकर ही रचना-क्षेत्र में अवतीर्ण हुआ था वहाँ हिन्दी के इस कलाकार ने उनसे बहुत आगे बढ़कर निम्न और मध्यम वर्ग के पात्रों से अपना सम्बन्ध स्थापित किया और उनके जीवन के संघर्षों में पैठ की।

प्रेमचन्द्—आपका जन्म सन् १८८० ई० में बनारस के एक ग्राम पाँडेपुर में हुआ। सन् १८९८ में आपने मैट्रिक पास की। सन् १९१९ में प्राइवेट इम्तहान देकर बी० ए० हुए। सन् १९२१ के राष्ट्रीय आंदोलन में आपने सरकारी नौकरी छोड़ दी और प्रकाशन-कार्य आरम्भ किया। सरस्वती-प्रेस खोला। 'माधुरी' का भी आपने सम्पादन किया। सन् १९३८ ई० में 'हंस' प्रकाशित किया। सन् १९३४ में फिल्म-व्यवसाय में बम्बई गये परन्तु सफल न हो सके। ८ अक्तूबर सन् १९३६ ई० में काशी में आपका देहावसान हुआ।

आपने कुल ग्यारह उपन्यास लिखे है। प्रथम उपन्यास 'प्रेमा' है। दूसरा 'सेवासदन' और तीसरा 'प्रेमाश्रम' है। 'रंगभूमि' का प्रकाशन सं० १९८१ में हुआ। सं० १९८३ मे 'कायाकल्प', सं० १९८७ में 'गबन', सं० १९८९ में 'कर्मभूमि' तथा सं० १९९१ में 'गोदान' निकला। 'मंगल-सूत्र' आपकी अंतिम और अपूर्ण रचना है।

'सेवासदन' उपन्यास में 'विधवा-विवाह' की प्रेरणा है। दहेज-प्रथा और बेजोड़-विवाह के अनर्थकारी परिणामों का इस उपन्यास में दिग्दर्शन है। समाज की इन कुरीतियों के कारण 'सुमन' को वेश्यालय में जाना पड़ता है। नारी-जीवन का जितना सहानुभूतिपूर्ण वर्णन इस उपन्यास में मिलता है उतना अन्यत्र दुर्लभ है। वेश्यालय का वर्णन करते समय भी लेखक समाज की ओर से सतर्क रहता है। इस उपन्यास में लेखक आर्यसमाजी प्रवृत्ति को लेकर हिन्दू-समाज पर कुठाराघात भी करता है। 'सेवासदन' हिन्दी-उपन्यास-क्षेत्र मे एक नये प्रकार की रचना थी, जिसे पाठकों ने वाह-वाह के साथ अपनाया। हिन्दी-उपन्यास-साहित्य

की यह पहली रचना है जिसे सही माने में **उपन्यास** की संज्ञा दी जानी चाहिए।

'प्रेमाश्रम' में ग्रामीण समाज का चित्रण किया है। कृपक और ज़मींदार की समस्याओं का इसमें लेखक ने चित्रण किया है। किसानों की दुर्दशा, ज़मींदारों के अत्याचार, पुलिस की बेरहमी और वकीलों की हरामज़दगी तथा नमकहरामी का खाका खींचा है। 'प्रेमाश्रम', 'सेवा सदन' से बड़ा हैं और भापा की दृष्टि से भी प्रौढ़ रचना है। इसके दो वर्ष बाद आपने 'रंगभूमि' की रचना की। 'रंगभूमि' के मूल में महात्मा गाँधी का असहयोग आंदोलन आता है। संसार को 'रंगभूमि' या रंग-मंच मानकर इस उपन्यास की रचना की गई है। इसी मंत्र पर आकर सब अपना-अपना खेल खेलते हैं। यह आपका पूर्ण विकसित उपन्यास है। इसमें नागरिक और ग्रामीण जीवन के साथ-साथ राष्ट्रीय जीवन को भी उपन्यासकार ने उभारा है। रचना में स्वाभाविकता भी पहले ग्रन्थों की अपेक्षा अधिक आई है। बलात् दुश्शील पात्रों को आदर्श स्थापित करने के लिए सुशील बनाने का प्रयास भी नहीं मिलता। चरित्रों की अस्वाभाविक रूप से खींचातानी भी नहीं की गई है।

'रंगभूमि' के कई वर्ष बाद आपने 'कायाकल्प' की रचना की। 'कायाकल्प' की रचना लेखक ने हिन्दू-मुस्लिम एकता को लेकर की। यह समय के राष्ट्रीय जीवन की एक मूल विचारधारा थी। पारस्परिक प्रेम और सद्भावना से इस समस्या को सुलझाने की ओर लेखक का सुझाव है। इसमें हिन्दू और मुसलमान पात्रों के पारस्परिक प्रेम और सम्पर्क को लेखक ने विकासोन्मुख करके दो समाजों के बीच बनने वाली खाई को पाटने का प्रयास किया है। इस उपन्यास में 'आवागमन' को लेकर धार्मिक पुट भी लेखक ने दी है। उपन्यास के पात्रों के इस जीवन की घटनाओं का उनके पूर्व जन्म की घटनाओं से भी सम्बन्ध स्थापित करने का प्रयास है। इस उपन्यास में चरित्र-चित्रण की दृष्टि से निष्काम-प्रेम, आत्मत्याग और कर्तव्य के प्रति जागरुकता का लेखक ने संदेश दिया है।

इसके पश्चात् आपके 'निर्मला' तथा 'प्रतिज्ञा' दो छोटे उपन्यास प्रकाशित हुए। सन् १९९३ में आपने 'गबन' की रचना की। इसमें राजनैतिक आंदोलन की ही पृष्ठभूमि है। चरित्र-चित्रण इसमें सुन्दर हुआ है। उपन्यास मनोरंजन की दृष्टि से भी सुन्दर कलाकृति है। 'गबन' में लेखक का पुरानी शैली से एक दम सम्बन्ध विच्छेद सा दिखाई पड़ता है। एक सी ही घटनावली को नये-नये रूप में प्रस्तुत करने की प्रणाली इसमें दृष्टिगोचर नहीं होती। कथावस्तु सुगठित और शृंखलाबद्ध है। परिस्थितियाँ घटनाओं के ही आधार पर बदलती हैं। पात्रों की संख्या भी व्यर्थ बढ़ी हुई नहीं है। कथोपकथन भी मार्मिक और सुन्दर हैं।

सन् १९३२ ई० में 'कर्मभूमि' का प्रकाशन हुआ। सन् १९३१ में गाँधी-इर्विन-पैक्ट हो चुका था। असहयोग-आंदोलन का देश के वातावरण पर व्यापक प्रभाव था। मज़दूर-किसान आंदोलन भी देश के व्यापक क्षेत्र में तीव्र हो उठे थे। 'कर्म-भूमि' की पृष्ठभूमि में ये आंदोलन ज्यों-के-त्यों वर्तमान हैं। सेठ-साहूकारों, मठाधीश-महंतों, जमीदारों एवं राज्य-कर्मचारियों पर प्रेमचन्द ने अच्छी फ़ब्तियाँ कसी हैं और खूब छींटे उड़ाये हैं। कृषकों के उत्पीड़न और उनकी दीनता के चित्र भी रोमांचकारी और हृदय-विदारक हैं, जो पाठकों के हृदयों में पीड़ा और कसक को जन्म देते हैं, करुणा को जाग्रत करते हैं। सामाजिक बुराइयों की ओर से भी उपन्यासकार कम सतर्क नहीं हैं। रचना-कौशल की दृष्टि से यह उपन्यास सुगठित और मनोरंजक है। भाषा सरल तथा विचारों की अभिव्यक्ति स्पष्ट है। चरित्र-चित्रण पात्रों की अधिकता के कारण अधिक नहीं निखर पाया।

'कर्मभूमि' के बाद 'गोदान' आता है जो प्रेमचन्द का सर्वश्रेष्ठ उपन्यास माना जाता है। कुछ आलोचक 'रंगभूमि' को भी उनका सर्वश्रेष्ठ उपन्यास मानते हैं। 'गबन' के अतिरिक्त अब तक लिखे गये अन्य सभी उपन्यासों में प्रेमचन्द ने आदर्श, सुधार और आंदोलनों को ही अपनी रचनाओं का मूलाधार बनाया था। 'सदन', 'आश्रम' और संस्थाओं की

ओर उनकी सुधारवादी प्रेरणा आप-से-आप आकृष्ट हो जाती थी और उन्हीं के अन्दर आपको अपनी समस्या का अंतिम हल दिखाई देता था। लेकिन उनके सतत संघर्षशील जीवन ने उनके आदर्शवादी दृष्टिकोण को गहरी ठेस पहुँचाई और उसका स्पष्ट प्रभाव हमें 'गोदान' में देखने को मिलता है। इस उपन्यास का झुकाव न तो किसी राष्ट्रीय आन्दोलन का तरफ़ है और न सामाजिक आश्रमों की ओर। इसमें विशुद्ध यथार्थवादी उपन्यास लिखने की प्रेरणा है और इसी लिए इसके पात्रों का जैसा सुन्दर चरित्र-चित्रण हुआ है वैसा अन्य किसी उपन्यास के पात्रों का नहीं हो सका। उपन्यासकार के व्यक्तिगत जीवन की इस उपन्यास में सुथरी छाया देखने को मिलती है। नागरिक जीवन के विलास रूप और ग्रामीण जीवन के अंधकारपूर्ण रूप दोनों ही इस उपन्यास में विकसित होते हैं। दोनों कथाएँ सम्बन्धित न होने पर भी साथ-साथ चलती है, यानी दो उपन्यास हैं, जो साथ-साथ लड़ीबद्ध कर दिये गये हैं। केवल देश के दो जीवनों की तुलना करने के लिए कलाकार ने उन्हें एक लड़ी में गूँथने का प्रयास किया है। होरी' गोदान का प्रधान पात्र है और वह ग्रामीण जीवन तथा दरिद्रता का प्रतीक है। उसका जीवन सामाजिक बंधनों से बँधा रहने पर भी जहाँ एक ओर उदारता और त्याग का आत्मबल अपने में रखता है वहाँ दूसरी ओर धर्म तथा समाजभीरू भी वह है। उसके अन्दर मानव की स्वाभाविक दुर्बलताएँ भी हैं, मोह भी है। होरी का चरित्र-चित्रण बड़ी ही कुशलता के साथ प्रेमचन्द ने चित्रित किया है और यदि यहाँ यह कह दिया जाय कि 'होरी' ही एक ऐसा पात्र है जो उनके सम्पूर्ण उपन्यास-साहित्य में उभर कर सामने आता है तो कथन अतिरंजित नहीं कहा जा सकता।

इस प्रकार हमने देखा कि प्रेमचन्द्र के उपन्यासों में देश के विशाल जन-जीवन की अमर कहानी गुंथी हुई है। भारत के किसान-आन्दोलन, राष्ट्रीय आन्दोलन, सामाजिक आन्दोलन सभी की मूल समस्याओं का कलापूर्ण समावेश इनकी रचनाओं में मिलता है। प्रतिभासम्पन्न कला-

कार के साहित्य-सृजन का यह विशेष उपयुक्त समय था जब राष्ट्रीय तथा सामाजिक चेतना हर दिशा से फूटी पड़ रही थी और देश में क्रांतिकारी विभूतियों ने विशाल आन्दोलनों और दमन की प्रतिक्रियाओं को शक्तिशाली रूप देकर जागरूक कर दिया था। ग़रीबी अवश्य थी राष्ट्र के जीवन में परन्तु संघर्ष और उथल-पुथल की चेतना भी कम नहीं थी। राष्ट्रीय-उत्थान के साहित्य सृजन का इससे अनुकूल और कोई अवसर नहीं हो सकता था। प्रेमचन्द को अपनी प्रतिभा और साहित्य के विकास के लिए अनुकूल अवसर मिला। नेताओं के आंदोलन और अंग्रेजों का दमन, दोनों ही उनकी साहित्यिक प्रेरणा को बल प्रदान करते थे। जनता के विद्रोह उनकी साहित्यिक भावना को बल प्रदान करते थे। आतंकवादी क्रांतिकारियों के संगठित प्रवासों का भी देश के वातावरण पर प्रभाव पड़ रहा था और उसका प्रभाव साहित्य पर भी पड़ता था। शरत का 'पथ का दावेदार' उपन्यास इन्हीं दिनों समने आया। राष्ट्रीय और सामाजिक जीवन में ये परिवर्तन यों तो भारतेन्दु जी के काल में ही दृष्टिगत होने लगे थे परन्तु उनका विकसित रूप इसी समय सामने आया।

मुंशी प्रेमचन्द ने हिन्दी-गद्य-साहित्य को अपने उपन्यासों के रूप में अपने समय की राष्ट्रीय तथा सामाजिक प्रेरणा का वह साहित्य प्रदान किया जिसे पढ़ने से उनका समकालीन जन-संघर्ष आँखों के सामने चित्रित हो उठता है। उनके समकालीन सामाजिक जीवन का निखरा चित्र सामने आ जाता है। आपका साहित्य राष्ट्र की महान् युग-क्रांति का पोषक रहा है।

आपने हिन्दी गद्य को एक नवीन शैली प्रदान की, जिसमें व्यर्थ पांडित्य-प्रदर्शन की ठनक नहीं है और बात को स्पष्ट तथा सरल ढंगसे कहने की प्रेरणा है। उर्दू और फ़ारसी के विद्वान् होने पर भी आपने व्यर्थ के लिए उर्दू-फ़ारसी के शब्दों का अपनी भाषा में प्रयोग नहीं

किया। उपन्यास, कहानी तथा नाटक-लेखन के लिए आपकी भाषा बहुत ही उपयुक्त सिद्ध हुई और उसे आपके समकालीन लेखकों ने अपनाया भी।

जयशंकर 'प्रसाद्'—प्रेमचन्द के पश्चात् दूसरा प्रतिभा-सम्पन्न उपन्यासकार हिन्दी साहित्य में जयशंकर 'प्रसाद' हुआ। सं० १९४६ में आप का जन्म काशी में हुआ। आपकी मृत्यु सं० १९९४ में हुई। 'प्रसाद' जी सर्वप्रथम कवि, द्वितीय नाटककार और तृतीय उपन्यासकार हैं। वैसे साहित्य की सभी धाराओं में आपकी विशेष गति थी। आपका प्रथम उपन्यास 'कंकाल' सं० १९८६ में प्रकाशित हुआ। 'कंकाल' की कथावस्तु बहुत सी घटनाओं की शृंखला मात्र है, सुगठित नहीं है। उपन्यास में वैधव्य, दुश्चरित्रता और वेश्यावृत्ति के चित्र उपस्थित किये गये हैं। घटनावली उपन्यासकार की इच्छा पर संचालित होती है। पात्रगण भी लेखक के संकेत पर नाचते हैं। चरित्र-चित्रण का स्वाभाविक विकास इसमें नहीं मिलता। भाषा सरल ही रखने का 'प्रसाद' जी ने प्रयास किया है। स्त्री और पुरुष हृदयों की भावनाओं का चमत्कारिक चित्रण है। पात्रों की दीन दशा का लेखक ने बहुत ही भावनात्मक और प्रभावात्मक वर्णन किया है। उपन्यास आकर्षक है और समाज के विशेष वर्गों की दयनीय दशा का चित्रांकन करता है।

'कंकाल' के बाद आपका दूसरा उपन्यास 'तितली' सं० १९९१ में प्रकाशित हुआ। उपन्यास के पात्र नागरिक और ग्रामीण दोनों प्रकार के हैं। घटना-स्थल ग्राम है परन्तु नगर के भी कुछ भाग आ जाते हैं। उपन्यास की घटनावली भी लम्बी है और पात्रों की संख्या भी। चरित्र-चित्रण स्वाभाविक हैं और वे घटनाओं के साथ चलते हैं। घटना-प्रवाह शृंखलाबद्ध है। पात्रों के कथोपकथन भावना-प्रधान हैं। उपन्यास सुन्दर और रोचक हैं। 'तितली' में नारी के कई रूप मिलते हैं। 'तितली' भारतीय दाम्पत्य-जीवन की एक सुन्दर कड़ी है। इस उपन्यास में व्यर्थ का विस्तार नहीं है। यह आद्योपान्त नाटकीय शैली से लिखा गया है।

'प्रसाद' जी का तीसरा उपन्यास 'इरावती' है। यह ऐतिहासिक था, और अपूर्ण ही रह गया। इसमें बाईस सौ वर्ष पहले की घटनाओं को लेकर 'प्रसाद' जी ने कथावस्तु तय्यार की थी।

'प्रसाद' जी के विषयों के चयन तथा प्रसार में गम्भीर जिज्ञासु की खोज और पहुँच की प्रेरणा रहनी थी। देश-काल के अनुसार उपन्यासों में उनके अन्य तत्वों का निर्वाह करने में उन्हें महत्वपूर्ण सफलता मिली है। कथावस्तु का गठन सुन्दर और कथोपकथन स्वाभाविक तथा भावना प्रधान हैं। दार्शनिकता की पुट उनकी रचनाओं में मिलती है। 'प्रसाद' जी का उपन्यास-लेखक योजनाबद्ध है। उनकी कथा और उनके पात्रों का संतुलित विकास हमें उनकी रचनाओं में देखने को मिलता है। 'प्रसाद' के ढाई उपन्यासों में से केवल 'कंकाल' ही साहित्यिक दृष्टि से विशेष महत्वपूर्ण है।

विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक—प्रेमचन्द की औपन्यासिक धारा से अनुप्राणित होकर कौशिश जी ने 'माँ' और 'भिखारिणी' दो उपन्यासों की रचना की। आपकी गति उपन्यास-लेखन में अधिक न होकर कहानी लेखन में अधिक थी। इन दोनों उपन्यासों में मातृत्व और प्रेम की भावना को भूल-स्थान प्राप्त है। कौशिक जी के संवाद स्वाभाविक हैं और भाषा पर प्रेमचन्द का पूर्ण प्रभाव है। आपके उपन्यासों को उच्चकोटि के उपन्यासों में नहीं रखा जा सकता।

पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र'—मुंशी प्रेमचंद के बाद यदि कोई प्रतिभासम्पन्न कलाकार हिन्दी गद्य-साहित्य में आया तो वह पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' था। समाज के कुत्सित और वर्जित अंगों को लेकर आपने निर्भीक साहस के साथ लेखनी उठाई। वेश्यावृत्ति और समाज की अन्य दुर्व्यवस्थाओं पर आपने प्रेमचन्द के सुधारवादी "आश्रमों" और "सदनों" का मरहम नहीं लगाया, बल्कि यथार्थवाद के गहरे नश्तर से उसकी चीर-फाड़ करके समाज के सामने प्रस्तुत कर दिया। लच्छेदार

भाषा और उसकी रवानी ने कलाकार के तीखे व्यंग्यों पर सान चढ़ा दी। 'उग्र' जी के प्रहारों ने साहित्य में तीव्र गति का संचार किया; जिसके फल-स्वरूप शिथिल और कम प्रतिभासम्पन्न साहित्यकार वर्ग तिलमिला उठा। इन तिलमिलाने वाले आलोचकों के वर्ग ने आपकी रचनाओं को 'घासलेटी' साहित्य की संज्ञा दी, अर्थात् अश्लील साहित्य। तथाकथित सत्य के अन्तर में इस कलाकार ने जो सामाजिक अश्लीलताओं के प्रति विद्रोह की ज्वाला भर दी थी, उसके व्यंग्य-प्रहारों का, उसके साहित्य को 'घासलेटी' साहित्य कहने वाला वर्ग मूल्यांकन न कर सका, यह उसकी प्रतिभा की कमी का द्योतक था, कलाकार की कला के विकास का बाँध नहीं।

'उग्र' जी के कई उपन्यासों में 'चन्द हसीनों के खतूत', 'चाकलेट' और 'बुधवा की बेटी' जो बाद में 'मनुपानन्द' के अधिक सार्थक नाम से प्रकाशित है, विशेष महत्वपूर्ण हैं। 'चन्द हसीनों के ख़तूत' की रवानीदार भाषा हिन्दी-गद्य में अपना सानी नहीं रखती।

'उग्र' जी के यथार्थवादी चित्रण के अन्तर से सामाजिक भ्रष्टता के प्रति घृणा की भावना जाग्रत होती है, भ्रष्टता की ओर आसक्ति नहीं। यही कलाकार की सफलता है, यही उसकी कला और रचनाओं की उपादेयता है। जिस युग में आप आये एक साहित्यिक क्रांति के रूप में आये, साहस की एक विशेष मूर्ति के रूप में आये, और विद्रोह के रूप में आये समाज और राष्ट्र की हर घृणित प्रवृत्ति के प्रति। जीवन भर किसी के साथ भी उनका सामंजस्य न हो सका, आज भी नहीं है। विरोधी शक्तियों से संघर्ष की यह बान ही उनकी साहित्य की प्रेरणा है।

चतुरसेन शास्त्री—आचार्य चतुरसेन शास्त्री ने भी अपने साहित्य में समाज के भ्रष्टाचारों का चित्रांकन किया है। 'उग्र' जी के ही समान समाज के उसी घृणित अंग को लिया है और साथ-ही-साथ प्रेमचन्द जी की प्रारम्भिक साहित्यिक प्रणाली के आधार पर 'हृदय की प्यास' जैसे

उपन्यासों की रचना की। परन्तु इन उपन्यासों में कोई विशेष उल्लेखनीय नहीं है। इधर दो ग्रंथों, 'वैशाली की नगरवधू' और 'वयंरक्षामः', की रचना करके आपने उपन्यास-साहित्य मे अपनी एक नवीन धारा निर्धारित करने का ऐलान किया है। हम इसे ऐतिहासिक धारा के ही अंतर्गत समझते हैं। आपका अंतिम उपन्यास 'गोली' साप्ताहिक हिन्दुस्तान में छप रहा है। इधर के इन तीन उपन्यासों में शास्त्री जी की खोजपूर्ण सामग्री का संचय है। उनका दावा भी है कि जो कुछ उनका ज्ञान है वह सब 'वयंरक्षामः' में भर दिया गया है।

शास्त्री जी एक विद्वान्, भाषाविद, शृंगार प्रिय उपन्यासकार के रूप में हमारे सामने आते हैं। आपके चित्रण बहुत आकर्षक हैं और कथा तथा संवाद भी बड़े मार्मिक और चुटीले होते हैं। आपकी भाषा में तीव्र ओज और प्रवाह हैं। इधर के आपके उपन्यासों की कलात्मकता, खोज और चरित्र-चित्रण मे महत्वपूर्ण निखार आया है। आपके उपन्यासों मे एक बड़ा दोष भी है और वह यह है कि आप जिस कथा को लेकर चलते हैं उसका और उसके पात्रों का सही विकास न करके अंतरकथाओं और अंतरपात्रों में कुछ ऐसे उलझ जाते हैं कि मूल कथा और मूल पात्र अविकसित से खड़े रह जाते हैं। इससे उपन्यास की रोचकता को ठेस लगती है। रोचकता को इधर कुछ आपके पांडित्य-प्रदर्शन की प्रणाली ने भी ठेस पहुँचाई है। शृंगार का नग्न चित्रण जितना पाठक को आपके उपन्यासों की ओर खींचता है उससे अधिक आपकी उपन्यास-क्षेत्र में घसीट लाने वाली अनावश्यक जटिलता और अंतरकथाओं का धिनका समावेश पाठक को उससे विमुख करने में सफल होता है। आपकी रचनाओं का प्रभाव पाठक पर न तो प्रेमचन्द की सुधारवादी प्रवृत्ति के रूप में पड़ता है और न पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र' की करारी चोट के रूप में। आपके साहित्य का हिन्दी-गद्य के विकास में महत्वपूर्ण योग है, परन्तु राष्ट्रीय चेतना के विकास-क्रम मे आपकी रचनाएँ कोई नया दृष्टिकोण लेकर सामने नहीं आती। आपने सामाजिक और ऐतिहासिक दोनों ही प्रकार

के उपन्यास लिखे हैं। सामाजिक उपन्यासों की अपेक्षा आपको ऐतिहासिक उपन्यासों की रचना में विशेष सफलता मिली है। 'सोमनाथ' भी आपकी सुन्दर कला-कृति है। यह उपन्यास अपेक्षाकृत अन्य उपन्यासों के, इधर-उधर की विशेष-ज्ञान-विस्तार-प्रणाली से भिन्न है और इसीलिए सबसे सुन्दर और रोचक भी है।

वृन्दावनलाल वर्मा—वृन्दावनलाल हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ ऐतिहासिक उपन्यासकार हैं। आपने अपने उपन्यासों में ऐतिहासिक कथानकों को रोमांस और आदर्शवाद की पृष्ठभूमि पर चुना है। 'गढकुण्डार', 'विराटा की पद्मिनी', 'महारानी लक्ष्मीबाई', 'मृगनयनी', 'अमरबेल' 'टूटे काँटे', 'सोना', इत्यादि आपके प्रमुख उपन्यास हैं। सामाजिक उपन्यास आपके केवल 'कुण्डली-चक्र' और 'प्रत्यागत' हैं। आपने अपने उपन्यास-साहित्य को बुंदेलखंड की जनश्रुतियों और वहाँ के इतिहास पर ही आधारित किया है। आपके औपन्यासिक कथावस्तु के लिए इतिहास और पुरात्व के अपनाने में राष्ट्रीय गौरव की झाँकी मिलती है; सांस्कृतिक चेतना का आभास मिलता है और वीरचरित्रों से परिचय प्राप्त होता है। आपने ऐतिहासिक उपन्यासों की रचना द्वारा जो उपन्यास लेखकों को मार्ग प्रदर्शित किया वह महत्वपूर्ण मार्ग है। भारतीय इतिहास और पुरातत्व की कथाओं में कितनी उपन्यास-साहित्य की सामग्री भरी पड़ी है, इसका लाभ नये उपन्यास-लेखक उठा सकते हैं। वर्मा जी ने प्रारम्भिक उपन्यासों में उलझी हुई कथाओं और उलझे हुए पात्रों को भी लिया है, परन्तु इधर नये उपन्यासों में यह प्रवृत्ति बराबर घटती जाती है। उपन्यासों की कथाओं और पात्रों का सुन्दर विकास हुआ है, पात्र खूब निखर कर सामने आये हैं। आपने पात्रों में युवकों, वीर, कायरों, धनाढ्य, निर्धन, मज़दूर, राजे और रानियाँ सभी का चित्रण किया है। सज्जन और दुर्जन दोनों ही प्रकार के पात्रों की सृष्टि की है।

वर्मा जी की भाषा न बहुत सरल, परन्तु स्वाभाविक प्रवाह-युक्त

सुसंस्कृत भाषा है। ऐतिहासिक कथाओं के आधार पर उपन्यास-रचना के लिए बहुत सुन्दर और उपयुक्त है। पुरात्व का गाम्भीर्य और कल्पना का मिठास जो इस भाषा में आता है वह बिलकुल चलती भाषा में नहीं आसकता।

जी० पी० श्रीवास्तव—हिन्दी गद्य-साहित्य के इसी विकास-क्रम मे जी० पी० श्रीवास्तव साहब ने अपने व्यंग्यपूर्ण साहित्य का सृजन किया। आपने 'दिल की आग उर्फ दिलजले की आह' नामक उपन्यास की रचना की। उपन्यास आत्मकथा के रूप में सामने आता है। उपन्यास में प्रेम-तत्व का सुन्दर वर्णन है, सुन्दर कला-कृति है। समय की राष्ट्रीय चेतना से इसका कोई लगाव नहीं। भाषा रवानीदार है।

इसी समय **शिवपूजनसहाय** ने 'देहाती दुनियाँ', **सियारामशरण गुप्त** ने 'नारी', **सुदर्शन** ने 'भागवंती' और 'प्रेम पुजारिन, **सूर्यकान्त त्रिपाठी** ने 'अप्सरा', 'अल्का', 'प्रभावती', 'कुल्ली भाट', 'बिल्लेसुर बकरिहा' इत्यादि उपन्यासों की रचनाएँ की और हिन्दी-गद्य-साहित्य की परम्परा को आगे बढ़ाया, विकासोन्मुख किया। इससे हिन्दी-गद्य-साहित्य का विकास हुआ और पठनीय पुस्तकें प्रकाश मे आईं। **देवनारायण द्विवेदी, अनूपलाल मण्डल, ठाकुर श्रीनाथसिंह** और **भगवतीप्रसाद वाजपेयी** भी इसी काल के कलाकारों में से हैं। इनकी रचनाओं ने भी हिन्दी-गद्य-साहित्य के पठनीय-साहित्य में वृद्धि की है।

हिन्दी का उपन्यास-साहित्य इस प्रकार अपनी दो दिशाओं में विशेषरूप से बह निकला। पहली दिशा प्रेमचन्द ने सुझाई, जिसमे राष्ट्रीय चेतना, समाज सुधार की प्रवृत्ति, गरीब जनता के अन्दर से रचनाओं के पात्रों का चुनाव, आम बोल-चाल की भाषा का प्रयोग इत्यादि विशेषताओं का समावेश हुआ और दूसरी का प्रवाह इतिहास और पुरातत्व की दिशा में हुआ। इसका प्रवर्तन वृन्दावनलाल वर्मा ने किया। परन्तु वृन्दावनलाल वर्मा का साहित्य इतिहास के लम्बे-चौड़े क्षेत्र

पर प्रेमचन्द की भाँति अपने पर न फैला सका। वह रोमांस, वीरता, भारतीय नारी के गौरव और बुंदेलखंडी इतिहास तक ही सीमित रह गया। कथानक के काल के समाज और उन दिनों की राष्ट्रीय चेतना का विकास आपकी रचनाओं में नहीं मिलता। इस दिशा में आचार्य चतुरसेन शास्त्री 'वैशाली की नगरवधू' और 'वयरक्षामः' में वर्मा जी से आगे बढ़ गये हैं। फिर भी रोचकता, ऐतिहासिकता, चरित्र-चित्रण और कथा की सफ़ाई तथा भाषा की प्रभावात्मकता को लेकर वर्मा जी ने निश्चित रूप से अपनी एक धारा हिन्दी गद्य साहित्य में बनाई है।

हिंदी-उपन्यास का नया युग यहीं से प्रारम्भ होता है।

प्रेमचन्द का उपन्यास साहित्य वर्तमान समाज और राष्ट्र की समस्याओं से अनुप्राणित था। उसी को लेकर आने वाले कई उपन्यासकारों के नाम हम ऊपर गिना चुके हैं। **पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र'** को छोड़कर शेष सभी ने समाज और राष्ट्र को उसी दृष्टिकोण से परखा जिससे मुंशी प्रेमचन्द ने परखा। आपके अनुगामियों का एक सिलसिला बन गया।

उपन्यास-साहित्य का नया युग नई प्रेरणाओं को लेकर सामने आया। विश्व के विचारक भौतिक विज्ञान के साथ-साथ मानव का भी मनोवैज्ञानिक अध्ययन कर रहे थे। मनुष्य के मस्तिष्क और हृदय में उठने वाले विचारों, भावनाओं और प्रेरणाओं का अध्ययन हो रहा था। सामाजिक विषमता, आर्थिक विषमता, राजनैनिक विषमता, वासनाओं की अतृप्ति मानस के चेतन, अवचेतन और अचेतन मन के परतों पर किन-किन उलझनों के विकार उत्पन्न कर देती हैं, इनका मनोवैज्ञानिक विश्लेषण किया जा रहा था। दार्शनिक विचारक, मनोवैज्ञानिक और शरीर-विज्ञान के आचार्य स्त्री और पुरुष को लेकर उनके जीवन का अध्ययन कर रहे थे। यह किसी राष्ट्र या समाज विशेष का अध्ययन नहीं था, यह मानव का अध्ययन था, किन्हीं विशेष परिस्थितियों के अन्दर।

इन्हीं दिनों काम की अतृप्ति और उससे उत्पन्न होने वाली कुंठाओं को लेकर फ्रायड के सेक्स मनोविज्ञान का प्रसार भी विश्व के कोने-कोने में हुआ और उसका भी प्रभाव हिन्दी उपन्यास-साहित्य पर हुए बिना न रह सका। केवल मनोवैज्ञानिक विचारक के लिए पुरुष और स्त्री के सम्बन्ध ही एक समस्या मात्र थे लेकिन फ्रायड के मनोविज्ञान में पुरुष और स्त्री के सेक्स-सम्बन्धों को ही प्रधानता दे डाली। यह मनोविज्ञान की विकृत सीमा थी और इसका प्रभाव भी हिन्दी के उपन्यास-साहित्य पर पड़ा। यह **'हिन्दी उपन्यास की मनोवैज्ञानिक धारा'** बनी जिसका प्रतिनिधित्व **जैनेन्द्रकुमार** और **इलाचन्द जोशी** ने किया। **'अज्ञेय'** का 'शेखर एक जीवनी' और 'नदी के द्वीप' भी इसी धारा की रचनाएँ हैं। इसे हम **'हिन्दी उपन्यास-साहित्य की फ्रायडियन धारा'** कहेंगे।

मनोवैज्ञानिक विचार धारा के साथ-ही-साथ विश्व के राजनैतिक पटल पर इस काल में मार्क्सवाद की विचार-धारा एक महत्वपूर्ण रूप लेकर अवतरित हुई। इस विचार-धारा ने विश्व के महा मानव की राजनैतिक, सामाजिक और व्यक्तिगत चेतना को जागरूक किया, पुरानी रूढियों के बन्धनों को छिन्न-भिन्न किया। धर्म के क्षेत्र में पौंगापंथियों ने पूंजीवादियों के साथ गठ-बन्धन करके ग़रीब जनता के शोषण का जो माया-जाल रचा हुआ था उसकी भी मार्क्सवाद ने पोल खोली और आध्यात्मिक विचारधारा को अमान्य करके भौतिक विचारधारा का प्रतिपादन किया। इस विचारधारा ने विश्व में एक क्रांति की लहर दौड़ा दी।

भारत में अंग्रेजों से संघर्ष करने वाले दो वर्ग थे, एक गांधीवादी अहिंसा का समर्थक और दूसरा क्रांतिकारी वर्ग। क्रांतिकारी वर्ग गांधीवादी वर्ग को पूँजीवादी साहूकारों और ज़मीदारों के गठबन्धन के साथ देश में पनपता हुआ देखकर मार्क्सवाद की तरफ झुक गया। हिन्दी उपन्यास-साहित्य में इस वर्ग के प्रतिनिधि लेखक **यशपाल जी** हैं। 'अज्ञेय'

का जीवन भी मार्क्सवादी क्रांति का पोषक रहा परन्तु उसमें उनके जीवन की विषमताएँ स्थायित्व न ला पाईं और इसीलिए उनका साहित्य भी विकृति का साहित्य बन गया। इसे हम **'हिन्दी उपन्यास-साहित्य की मार्क्सवादी धारा'** के नाम से पुकारेंगे।

हिन्दी उपन्यास-साहित्य में एक तीसरी धारा इसी राजनैतिक उथल-पुथल के युग में सामने आई। यह राजनैतिक उपन्यासों की धारा है जो आगे चलकर भविष्य में ऐतिहासिक उपन्यास-साहित्य का ही एक रूप बन जायगी। इस धारा के उपन्यासों में भारत के वर्तमान युग की राजनीति को औपन्यासिक रूप में प्रस्तुत किया गया है। भारत के राजनैतिक वातावरण का इन उपन्यासों पर गहरा प्रभाव है और इनके कथानक तथा पात्र भारतीय राजनीति के ही कथानक और पात्र हैं। **यज्ञदत्त शर्मा** के उपन्यास इस धारा की महत्वपूर्ण रचनाएँ हैं। **गुरुदत्त** के उपन्यास भी भारतीय राजनीति की ही पृष्ठभूमि पर लिखे गये हैं। इन दोनों लेखकों की विचारधारा में आकाश-पाताल का अन्तर है परन्तु पृष्ठ-भूमि दोनों की राजनैतिक है। इसे हम **'हिन्दी उपन्यास-साहित्य की राज-नैतिक धारा'** कहेंगे।

इन धाराओं से पृथक भी इस काल में काफी उपन्यासकार सामने आये जिन्होंने अपनी अमूल्य कृतियों द्वारा हिन्दी उपन्यास-साहित्य के भण्डार को भरा और हिन्दी गद्य-साहित्य को विकसित किया। इन प्रतिभाओं ने उपन्यास-क्षेत्र में आने वाले उक्त नये दृष्टिकोणों, नई विचार धाराओं, नई चेतनाओं और नये विकास-क्रमों को आगे बढ़ाया।

इनमें से कुछ ने हिन्दी गद्य की नई-नई प्रयोगवादी शैलियों के विकास की ओर भी महत्वपूर्ण योग दिया है परन्तु यह महत्व साहित्य के विचार-पक्ष पर प्रधानता प्राप्त नहीं कर सकता। इस काल के अन्य प्रमुख उपन्यासकारों में **गोविंदवल्लभ पंत** (मदारी, प्रतिमा, जुलिया, नूरजहाँ, अमिताभ, चक्रकांत, प्रगति की राह पर, मुक्ति के बन्धन, नौ-

जवान), **भगवतीप्रसाद वाजपेयी** (प्रेमपथ, पिपासा, परित्यक्ता, दो बहिनें, लालिमा, अनाथ पत्नी, ज्योत्सना, निमंत्रण, चलते-चलते, भू-दान, यथार्थ से आगे, आत्मविश्वास), **भगवतीचरण वर्मा** (चित्रलेखा, तीन वर्ष), **प्रतापनारायण श्रीवास्तव** (विदा, विकास, विजय, बयालीस, विसर्जन), **ऋषभचरण जैन** (भाई, गदर, सत्याग्रह, दिल्ली के व्यभिचार, दिल्ली का कलंक, दुराचार के अड्डे, चाँदनी रात, मयख़ाना, वेश्या पुत्र, चंपाकली, पैसे का साथी, बुर्दा फरोश, मास्टर साहब, वह कौन थी), **उपेन्द्रनाथ अश्क** (सितारों के खेल, मेरी दुनिया, गर्म राख, गिरती दीवारें, बेंगन का पौधा, दीप जलेगा), **रांगेय राघव** (सीधा-सादा रास्ता, मुर्दों का टीला, चीवर, प्रतिदान, अंधेरे के जुगनू, घरौंदे, विषाद-मठ, हुजूर, काका, देवकी का बेटा, यशोधरा जीत गई, रत्ना की बात), **सर्वदानन्द वर्मा** (नरमेध), नागार्जुन (बाबा बटेसरनाथ, बलचनवा) तथा **प्रभाकर माचवे** विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इनके अतिरिक्त इन्द्र विद्यावाचस्पति, सद्गुरु शरण अवस्थी, देवेन्द्र सत्यार्थी, यादवेन्द्र शर्मा चन्द्र, कंचनलता सब्बरवाल, कमल शुक्ल डा० देवराज, अमृतराय, उदयशंकर भट्ट, विंध्याचल प्रसाद, रजनी पनिकर, क्षेमचन्द्र सुमन, हितवल्लभ गौतम, हर्षनाथ, लक्ष्मीचन्द्र वाजपेयी इत्यादि उपन्यासकारों ने भी उपन्यास-साहित्य को अपनी रचनाओं द्वारा आगे बढ़ाया है।

मुंशी प्रेमचन्द से पूर्व ऐयारी और गन्दे रोमांस को लेकर भी जो एक धारा हिन्दी उपन्यास-क्षेत्र में प्रवाहित हुई थी उसका विकास भी वहीं पर न रुका। उस धारा का वर्तमान काल में हिन्दी उपन्यास-साहित्य के अन्दर प्रवर्तन कुशवाहाकान्त, प्यारेलाल आबारा इत्यादि ने किया। यह प्रधानतया रोमांस और हल्के किस्म के सेक्स को उभारने वाला अश्लील साहित्य है जिसे सदगृहस्थों में नहीं पढ़ा जा सकता। विचारों और भावनाओं के अधकचरे बच्चे और बच्चियों पर इसका बुरा प्रभाव पड़ा है।

हिन्दी उपन्यास-साहित्य की मनोवैज्ञानिक धारा

जैसा ऊपर भी स्पष्ट किया जा चुका है, इस धारा का प्रवर्तन हिन्दी उपन्यास-साहित्य में जैनेन्द्रकुमार ने किया।

जैनेन्द्रकुमार जी के 'परख', 'सुनीता', 'तपोभूमि', 'त्यागपत्र', 'कल्याणी', उपन्यास सन् १९४० से पहले लिखे गये। सन् १९५२-५३ में आपने 'सुखदा', 'विवर्त' और 'व्यतीत' तीन उपन्याम और लिखे। जैनेन्द्र जी के उपन्यासों में प्रेमचंद का समाजवादी व्यापक दृष्टिकोण दिखाई नही देता और न राष्ट्रीय चेतना का ही वह आन्दोलनकारी स्वरूप इनमें है। जैनेन्द्र जी के उपन्यास सामाजिक तथा राष्ट्रीय चेतना से अनुप्राणित न होकर मानव की अपनी कुंठाओं, अपनी उलझनों अपने मानसिक विकारों तथा अपने सेक्स-प्रवाह की धारा मे चिन्ता के माध्यम बने हैं। पात्रों के मनोवैज्ञानिक विश्लेषण पर आपने विशेष जोर दिया है। आपने अपने पात्रों के बाहर जगत की अपेक्षा अंतर्जगत का निरीक्षण करने का प्रयास किया है। हिन्दी उपन्यास-क्षेत्र में यह पहला प्रयास है जिसमें लेखक अपने पात्रों के मस्तिष्क और हृदय के 'परत पर परत' उतार कर उसका निरीक्षण करता है। जैनेन्द्र जी के पात्रों के मन और हृदय में उठने वाले विकारों का जन्म जीवन मे आने वाली व्यक्तिगत तथा समाजगत घटनाओं से ही होता है। आपके उपन्यासों में 'नारी' ही प्रधान रूप से उपन्यासकार की उलझन का विषय बनती है। प्रेमचंद की नारी और जैनेन्द्र की नारी में आकाश पाताल का अन्तर है। प्रेमचंद ने समाज के अत्याचारों को सहन करने वाली नारी का चित्रण किया है और जैनेन्द्र जी ने अपने नाटकों की समस्या-रूप नारी को चित्रित किया है। यानी उनके नाटकों के जीवन की प्रधान समस्याएँ ही उनकी प्रेमिकाएँ हैं जिनके इर्द-गिर्द उनका तथा अन्य प्रेमियों का जीवन मंडराता रहता है।

वास्तव में सत्य यह है कि यह भी एक वर्ग है कि जिसमें इस किस्म

के पात्र होते है, परन्तु जैनेन्द्र जी ने इन परिस्थितियों में अपने सभी वर्ग के पात्रो को रखने की भूल की है। सामाजिक और आर्थिक विषमता से पृथक आपने मानसिक विषमता के क्षेत्र मे नारी का अध्ययन प्रस्तुत किया है।

जैनेन्द्र जी की कथा कहने और विचार प्रस्तुत करने की अपनी पैनी, प्रभावात्मक और कलापूर्ण शैली है; जिसमे रोचकता बराबर बनी रहती है। शैली का जहाँ तक प्रश्न है, हम जैनेन्द्र को प्रेमचन्द जी से भी आगे पाते हैं, परन्तु जहाँ मूल विषय के विश्लेषण का प्रश्न सामने आता है वहाँ जैनेन्द्र जी का क्षेत्र बहुत सीमित है। वह अपने ही चारों तरफ चक्कर लगाते हैं, बाहर की दुनिया से व्यापक सम्पर्क स्थापित नहीं कर पाते। आपका साहित्य आत्म-असन्तोष का साहित्य है।

आपके उपन्यास मनोविश्लेषण की दृष्टि से हिन्दी उपन्यास-साहित्य को एक नई दिशा प्रदान करते हैं। मानव समाज की ही एक इकाई है और उसी इकाई के मनोविश्लेषणात्मक चित्रण को लेकर आपके उपन्यास चलते हैं। इसलिए व्यापक रूप से हम इन्हे प्रेमचन्द जी की सामाजिक धारा के अन्दर ही रखकर भी इनके पृथक दिशा के विकास और मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण को भुलाकर नही चल सकते। आपकी रचनाएँ हिन्दी उपन्यास-साहित्य की अमूल्य थाती हैं और उपन्यास-कला तथा साहित्य को एक नई दिशा प्रदान करती हैं।

हिन्दी उपन्यास-साहित्य की फ्रायडियन धारा

ऊपर जैनेन्द्र जी के साहित्य की प्रेरणास्वरूप हमने मनोवैज्ञानिक विश्लेषण का अध्ययन किया। वह जितना गम्भीर है उसे उसी गम्भीरता के साथ कलाकार ने निभाया है।

मनोविज्ञान के क्षेत्र मे सेक्स की प्रधानता को लेकर फ्रायड का मनोविश्लेषण आता है। इसका प्रभाव योरोप की आधुनिकतम विचार-

धारा पर बड़े वेग के साथ हुआ और नई-नई विशृंखल प्रवृतियों की ओर लपकने वाला प्रतिभासम्पन्न लेखक-वर्ग भी अपने को इसके प्रभाव से वंचित न रख सका। प्राचीनता का परित्याग और नवीनता के प्रति आकर्षण रखने वाले वर्ग के लिए यह दिलचस्प भी था। मनोविश्लेषण की यह प्रवृत्ति जैनेन्द्र जी से भी एक डिग्री और आगे बढ़ गई। **इलाचन्द जोशी** पर फ्रायड का व्यापक प्रभाव पड़ा। रुग्ण मानस के व्यक्तियों को आपने अपने उपन्यासों का पात्र चुना। फ्रायड ने अपने मनोविज्ञान में वासना को प्रधान स्थान दिया है। उनका मत है कि सामाजिक विषमता द्वारा मानव के वासना की पूर्ति के पूर्ण साधन न जुटा पाने पर उसके अवचेतन और अचेतन मन पर उसका गहरा प्रभाव पड़ता है। सेक्स के विभिन्न कौम्प्लैक्सों का जन्म इसी अतृप्ति के फल-स्वरूप होता है। इसी के कारण वह स्व-रति, मातृ-रति, भग्नि-रति, आत्म-ग्लानि, विषयासक्ति की वासना-वृत्ति के चक्करदार वेग में पड़-कर साधारण जीवन में असंतुलित हो जाता है। वह असामाजिक प्राणी बन जाता है। इलाचन्द जी ने अपने उपन्यासों में मानव-जीवन के अव-चेतन और अचेतन मन के पर्दो मे छिपी वासना का अध्ययन किया है। यही कारण है कि आपके उपन्यासों के पात्र सामाजिक विषमता से अनुप्राणित होकर भी असामाजिक हो गये हैं। 'प्रेत और छाया' आपका इसी धारा का उपन्यास है। यों इसके अतिरिक्त भी आपके आठ-दस उपन्यास प्रकाशित हो चुके हैं।

फ्रायड के मनोविज्ञान का प्रभाव विचारकों और प्रतिभासम्पन्न कलाकारों पर उतना टिकाऊ न रह सका कि वे उसी दिशा में बहते चले जाते। जोशी जी की 'प्रेत और छाया' के बाद की रचना 'मुक्ति-पथ' में हमें उपन्यासकार की दिशा बदलती हुई दिखलाई देती हैं। जोशी जी के उपन्यास फिर सामाजिक पात्रों को लेकर सामने आते हैं। 'मुक्ति-पथ', 'प्रेत और छाया' के एक दम विपरीत पड़ता है। 'प्रेत और छाया' में यदि काम और वासना के अतिरिक्त और कुछ दिखाई नहीं

देता तो 'मुक्ति-पथ' में राजीव एक दम वासना और प्रेम के प्रति उदासीन और देश-भक्ति में रत दिखलाई पड़ता है। इस उपन्यास में लेखक की प्रेरणा से अधिक प्रकाशक और टैक्सट-बुक-कमेटी की प्रेरणा दिखाई देती है। आपकी नवीनतम रचना 'जहाज़ के पंछी' में आपका सामाजिक दृष्टिकोण और साफ़ होकर सामने आया है और ऐसा प्रतीत होता है कि जैसे आपने अपने साहित्य के लिए चुनी हुई फ्रायड की काम-प्रधान मनोविश्लेपणात्मक धारा को स्वयं ही नमस्कार कर लिया।

हिन्दी उपन्यास-साहित्य की मार्क्सवादी धारा

ऊपर कह चुके हैं कि मार्क्सवादी धारा का उपन्यास-साहित्य में प्रवेश श्री यशपाल जी की रचनाओं के द्वारा होता है। आपने 'मार्क्सवाद' पर पुस्तक भी लिखी है और 'गांधीवाद' की 'शव-परीक्षा' भी की है। 'दादाकॉमरेड', पार्टीकॉमरेड', 'देश-द्रोही', 'दिव्या', 'मनुष्य के रूप' आपके उपन्यास है। आपके साहित्य में एकदेशीय भावना न होकर समस्त विश्व की चेतना को अपने अन्दर समेट लेने का प्रयास है। रूसी कम्यूनिज़्म को आधार मानकर राष्ट्र के सामाजिक और आर्थिक ढाँचे का पुनर्गठन करने का आपने स्वप्न देखा है।

उपन्यास-लेखन में आपका दृष्टिकोण पूर्ण रूप से यथार्थवादी रहा है। स्त्री और पुरुष के यौन-सम्बन्धों को लेकर आप अपनी रचनाओं में रंगीनी और रोचकता लाने का प्रयास करते है। आपकी रचनाएँ रोमांस-प्रधान होती हैं। वर्तमान समाज के खोखलेपन पर भी आपने चोटें की है। विश्व की आर्थिक विषमता को लेकर आपने अपनी चेतना को विकसित किया है। विश्व के सांस्कृतिक विकास और मानव-जीवन की सुख तथा शान्ति को लेकर नही। सौंदर्य की कल्पना में केवल नारी का ही आकर्षण प्रधान रूप से सामने आता है। इस प्रकार के नग्न चित्रण उपन्यासों को हल्का बना देते हैं।

आपका उपन्यास-साहित्य निश्चय ही हिन्दी उपन्यास-साहित्य को

एक नया दृष्टिकोण प्रदान करता है। इस धारा का प्रभाव भारत के कम्युनिस्ट साहित्यकारों की रचनाओं पर व्यापक रूप से दिखाई देता है।

हिन्दी उपन्यास-साहित्य की राजनैतिक धारा

राजनीति को प्रधान रूप अपने उपन्यास-साहित्य की पृष्ठभूमि के रूप में लेकर चलने वाले उपन्यासकार यज्ञदत्त शर्मा और गुरुदत्त ही सामने आते हैं। यज्ञदत्त शर्मा के उपन्यास 'ललिता', 'दो पहलू', 'इन्सान', 'निर्माण-पथ', 'महल और मकान', 'मधु', 'झुनिया की शादी', 'इन्साफ़', 'अन्तिम-चरण', 'परिवार', 'बाप-बेटी' और 'दीवान रामदयाल' है। ये सभी सामाजिक और राजनीतिक पृष्ठभूमि पर लिखे गये हैं। इनके पात्र भी देश की राजनैतिक चेतना के प्रधान अंग बन कर चलते हैं। देश के राष्ट्रीय आन्दोलनों का पूरा इतिहास इनके उपन्यासों में गुथा हुआ है। विशेष रूप से सन् १९३० से लेकर आज तक की राजनीतिक उथल-पुथल का पूर्ण परिचय उनसे प्राप्त होता है। आपके उपन्यासों में न तो जीवन की कुण्ठाओं की उलझन है, न वादों का चक्कर, न शैलियों की ठनक, न प्रयोगों का पाण्डित्य। सीधी-सादी भारतीय मानव के जीवन की यथार्थवादी कहानियाँ हैं, जिनमें आज का समाज बोलता है, आज का राष्ट्र बोलता है, आज का मानव बोलता है, संघर्ष करता है, आगे बढ़ता है, पुरानी मार्ग रोकने वाली रूढ़ियों को तोड़ता है। राष्ट्र और समाज के जीवन में आने वाली समस्याओं का हल प्रस्तुत करता है, सहयोग और सद्भावनाओं को आगे बढ़ाता है।

इसके ठीक विपरीत गुरुदत्त का उपन्यास-साहित्य नई चेतना का विरोध करता है, नये राष्ट्र को पुराने साँचे में ढालने का स्वप्न देखता है। पुरानी रूढ़ियों से समाज को जकड़ने का प्रयास करता है। प्राचीन संस्कृति को नये विज्ञान के प्रकाश में उपयोगी बनाने के बजाय प्रकाश को अंधकार कह कर पुकारता है। राष्ट्रीय स्वयं-सेवक-सघ की विचार-

धारा से आपका उपन्यास-साहित्य अनुप्राणित है जिसमें 'गाँधीवाद' का भी विरोध है, मार्क्सवाद का भी विरोध है, प्रगति के हर मार्ग का विरोध है। 'देश की हत्या', 'विडम्बना', 'बाम-मार्ग', 'विश्वासघात', 'विकृत छाया', 'विलोम गति', 'बहती रेता', 'भावुकता का मूल्य', 'गुंठन' और 'मानव' आपके लिखे हुए उपन्यास हैं।

इस प्रकार हमने देखा कि आधुनिक युग में हिन्दी उपन्यास-साहित्य ने आशातीत प्रगति की है और हिन्दी गद्य-साहित्य के विकास में यह एक महत्वपूर्ण पग है। उपन्यास-साहित्य दिन-दूनी और रात-चौगुनी उन्नति कर रहा है। एक-से-एक नई प्रतिभा उपन्यास-क्षेत्र में अवतीर्ण हो रही है। हिन्दी उपन्यास-साहित्य का भविष्य बहुत ही उज्ज्वल है।

*

कहानी-साहित्य का विकास

कहानी उपन्यास की तरह कोई नया रूप लेकर सामने नहीं आती। हिन्दी-साहित्य के वातावरण के लिए 'कहानी' शब्द नया भी नहीं है। 'जातक' और 'पंचतंत्र' की कहानियों से कौन अपरिचित है ? 'वृहद-कथा' और अनेकों आख्यायिकाओं से हमारा साहित्यिक वातावरण पूर्ण है; परन्तु आधुनिक साहित्य में कहानी का जो रूप विकसित हो रहा है उसमें और पुराने कहानी-साहित्य में आकाश-पाताल का अन्तर है। प्राचीन कहानियों में हमें सम्पूर्ण जीवन की कहानियाँ मिलती हैं। उनमें कथावस्तु, चरित्र-चित्रण, समस्या, मानसिक द्वन्द, और परिस्थितियों का चित्रांकन नहीं होता। प्राचीन साहित्य में नीति सम्बन्धी, स्थूल घटनाओं सम्बन्धी, जीवनियों सम्बन्धी वर्णनात्मक शैली में लिखी हुई कहानियाँ मिलती हैं।

आधुनिक कहानी का जो रूप हमारे सामने है उसका परम्परागत सम्बन्ध इन प्राचीन कहानियों से स्थापित न किया जा सकता हो, ऐसी बात नहीं है। परन्तु आज की कहानी की कथावस्तु, शैली-गठन, रचना-विधान, सभी कुछ प्राचीन कहानी से भिन्न हो चुका है। आज की कहानी सम्पूर्ण जीवन की वर्णनात्मक कहानी न होकर केवल परिस्थिति विशेष, घटना-विशेष, समस्या-विशेष इत्यादि के कलात्मक चित्रण के रूप में सामने आती है। मानव-जीवन की विशेष परिस्थितियों को लेकर आज जो कहानी-साहित्य रचा जा रहा है उसमें जीवन की गम्भीर अभिव्यक्तियाँ सजीव हो उठी हैं।

आज की कहानी केवल घटना का सजीव चित्रण-मात्र नहीं है।

हर घटना और हर कथा को लेकर कहानी नहीं लिखी जा सकती। केवल भाषा का बँधाव और सुन्दर शब्द-योजना सुन्दर कहानी-लेखन के लिए पर्याप्त नहीं हैं। सार्थक समस्या, प्रसंग या घटना को लेकर ही कहानी लिखी जा सकती है। कहानी में वाह्य-जीवन की घटनाएँ और अंतर्द्वन्द दोनों समान रूप से महत्वपूर्ण है। उपन्यास की भाँति कहानी में पूरे जीवन की रूपरेखा का आना आवश्यक नहीं। कहानी वर्णनात्मक और नाटकीय विवादों तथा दोनों के मिश्रित रूपों में लिखी जाती है।

हिन्दी उपन्यास-साहित्य के साथ-ही-साथ हिन्दी कथा-साहित्य का विकास होता है। हिन्दी कहानी-साहित्य को प्राचीनता प्रदान करने वाले महानुभाव कहानी का विकास **इंशाअल्ला खाँ** की 'रानी केतकी की कहानी' से भी मानते हैं। प्राचीनता के मोह को संवरण न कर सकने पर 'रानी केतकी की कहानी' को हिन्दी की प्रथम कहानी मान लेने में कोई दोष नहीं, परन्तु आधुनिक कथा-साहित्य का कोई भी रूप हमें उसमें देखने को नहीं मिलता। **राजा शिवप्रसाद सितारेहिन्द** का 'राजा भोज का सपना' कहानी-साहित्य की दूसरी कड़ी है। **भारतेन्दु** जी के समाकालीन लेखक **किशोरीलाल गोस्वामी** तथा **लाला पार्वती नन्दन** ने कई कहानियाँ लिखीं। और इस प्रकार कहानी-साहित्य का हिन्दी गद्य-साहित्य में विकास हुआ। **गोपालराम गहमरी** के 'जासूस' पत्र में काफी छोटी कहानियाँ छपीं। इन्हीं दिनों बंगला, रूसी और अंग्रेजी से हिन्दी में बहुत सी कहानियों के अनुवाद हुए। शरत और रवीन्द्र की कहानियाँ छपीं। महावीरप्रसाद द्विवेदी ने 'सरस्वती' में बहुत सी अनूदित कहानियाँ छापीं। मौलिक कहानी-लेखन को प्रोत्साहन देने के लिए भी कुछ रचनाएँ द्विवेदी जी ने प्रकाशित की, परन्तु वे अधिक प्रभावात्मक न हो सकीं। उनकी भाषा और रचना-शैली में पाठक आनन्द न ले सके।

जयशंकर 'प्रसाद' जी की प्रेरणा से इसी समय 'इन्दु' पत्रिका का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ और इसमें आपकी सर्वप्रथम कहानी 'ग्राम' छपी।

पं० विश्वंभरनाथ 'कौशिक', पं० चन्द्रधर गुलेरी और **राधिकारमण प्रसाद सिंह** ने भी इसी समय कहानियाँ लिखीं।

इस प्रकार कहानी-साहित्य का हिन्दी-गद्य में सूत्रपात हुआ।

जयशंकर 'प्रसाद'—हिन्दी कहानी-साहित्य के प्रथम जन्म दाता इस प्रकार **जयशंकर 'प्रसाद'** ही ठहरते है। आपकी प्रथम कहानी सन् १९११ में 'इन्दु' में प्रकाशित हुई। 'प्रसाद' जी की कहानियों में भावात्मकता और नाटकीयता के दर्शन होते है। आपने ऐतिहासिक, सामाजिक, धार्मिक, तथा राजनीतिक, सभी प्रकार के विपयों को लेकर कहानियाँ लिखीं हैं। आपके कथोपकथन बहुत सजीव और मार्मिक होते हैं। भाषा में काव्य का सा प्रवाह है और कहीं-कहीं तो आपकी शैली गद्य-गीत की शैली का अनुकरण करती दीख पड़ती है। 'प्रसाद' जी ने अपनी कहानियों में मनोवैज्ञानिक चित्रण भी प्रस्तुत किये हैं। आपकी कहानियाँ चरित्र-चित्रणप्रधान होती हैं। 'छाया,' 'प्रतिध्वनि', 'आकाशदीप' 'आँधी' और 'इन्द्रजाल' आपके पाँच कहानी-संग्रह हैं।

इसी समय **चंडीप्रसाद 'हृदयेश'** और **विनोदशंकर व्यास** ने भी आपकी ही शैली में कहानियाँ लिखी हैं।

चन्द्रधर गुलेरी—गुलेरी जी की केवल तीन कहानियाँ हैं, परन्तु उनका स्थान हिन्दी कहानी-साहित्य में बेजोड़ है। भाषा, भाव और कथा-वस्तु के विचार से ही नहीं, वरन् कहानी-कला के भी विचार से ये अपना महत्व रखती हैं। आपकी 'उसने कहा था' कहानी ने बहुत ख्याति प्राप्त की है।

प्रेमचन्द—यों हिन्दी-गद्य के कथा साहित्य में मुंशी प्रेमचंद से पूर्व कुछ कहानियों का विकास हुआ और बंगला कथा-साहित्य से प्रभावित होकर कुछ कहानियाँ लिखी गईं, परन्तु कहानी का जो रूप हिन्दी-कथा-साहित्य में आगे चलकर प्रस्फुटित हुआ उसकी रूपरेखा प्रेमचंद जी ने ही तय्यार की। आपने लगभग तीन सौ कहानियाँ लिखी हैं। आपकी

प्रथम कहानी जो सन् १६१६ में हिन्दी में प्रकाशित हुई वह 'पंचपरमेश्वर' है। इससे पूर्व आपकी कहानियाँ उर्दू में छप चुकी थीं। सन् १६०७ ई० में 'सोज़ेवतन' नाम से उर्दू में आपका कहानी-संग्रह प्रकाशित हो चुका था, जिसे सरकार ने ज़ब्त कर लिया था और उसकी उपलब्ध प्रतियों को जलवा दिया गया था। आपकी कहानियों के कई संग्रह हैं।

प्रेमचंद जी की कहानियों में भी विषय की दृष्टि से वही राष्ट्रीय और सामाजिक वेदना भरी है जो उनके उपन्यास-साहित्य के अंतर्गत हम पीछे देख चुके हैं। भारतीय जीवन के यथार्थवादी पहलुओं पर आपने सुन्दर कहानियाँ लिखी हैं। उनकी कहानियों में जीवन की खोज का सतत प्रयास दृष्टिगोचर होता है। आपने भारत के प्रायः सभी वर्गों के प्रतिनिधि पात्रों को लेकर रचनाएँ की हैं और अपनी कहानियों की शैलियों को भी विविधरूपता प्रदान की है। आपकी कहानियों में कहानी की बहुत सी शैलियों के प्रयोग मिलते है। चरित्र-प्रधान, घटना-प्रधान, राजनैतिक, सामाजिक, मनोवैज्ञानिक, ऐतिहासिक, पौराणिक—सभी प्रकार की कहानियाँ आपने लिखी है। मानव के बाहर और भीतर पैनी-दृष्टि से झाँकने का आपने सफल प्रयास किया है और उसका चित्रण यथार्थवादी ढंग से किया। 'आत्माराम', 'शतरंज के खिलाड़ी', 'अलग्योझा', 'सुजान भगत', 'पंचपरमेश्वर', 'कफ़न' आपकी बहुत विख्यात कहानियाँ हैं, जिन्हें विश्व के सर्वश्रेष्ठ कथा-साहित्य के मध्य रखा जा सकता है। कहानी-साहित्य द्वारा प्रेमचंद ने समाज और राष्ट्र के हर पहलू पर प्रकाश डालने का प्रयास किया है और इसमें उन्हें सफलता भी मिली है। प्रेमचन्द की साफ़, सुथरी और सरल भाषा के प्रवाह ने उनकी रचनाओं को चार चाँद लगा दिये हैं। 'प्रसाद' जैसी दुरूहता से आपकी कहानियाँ मुक्त हैं, इसीलिए व्यापक प्रसिद्धि और पठनीयता आपकी कहानियों को प्राप्त हो सकी।

विश्वम्भरनाथ शर्मा—आपने भी अपना लेखन-कार्य प्रेमचन्द जी की भाँति पहले उर्दू में ही प्रारम्भ किया था। सन् १६१३ में आपकी 'रक्षा

बन्धन' कहानी प्रकाशित हुई। आपकी कहानियों में केवल समाज-सुधार की भावना मात्र मिलती है। कहानियाँ सरल, भावुक शैली में लिखी हुई हैं। भाषा साफ़ और स्पष्ट है। प्रेमचंद की भाँति जीवन की गहराई में पैठ करने की क्षमता आपकी कहानियों में नहीं है। यों आपने भी लगभग ३०० कहानियाँ लिखी हैं परन्तु आज तक आते-आते उनका विस्मरण-सा ही हो गया है। आपकी 'दुबेजी की चिट्ठियाँ', जो 'चाँद' में प्रकाशित हुईं, उन दिनों उनका काफ़ी शोर भी रहा। 'चित्रशाला' और 'कल्प मंदिर' नाम से आपके दो कहानी-संग्रह प्रकाशित हुए। 'ताई' आपकी काफ़ी प्रसिद्ध कहानी है।

सुदर्शन—सुदर्शन जी भी प्रारम्भ में उर्दू के ही लेखक थे। सन् १९२० ई० में आपकी 'हार-जीत' कहानी 'सरस्वती' में छपी। 'सुदर्शन-सुमन', 'सुदर्शन-सुधा', 'पुष्प-लता', 'तीर्थयात्रा', 'सुप्रभात', 'गल्प-मंजरी', 'नगीना', 'पनघट', 'चार कहानियाँ' इत्यादि आपकी कहानियों के संग्रह हैं। आपने भी प्रेमचन्द जी की यथार्थवादी चित्रण की ही परम्परा को अपनाया है। आपकी रचनाओं में जीवन के सत्य का उद्घाटन करने का प्रयास मिलता है। आपका बात करने का ढंग बड़ा रोचक और संतुलित है। जीवन के अन्दर वह पैठ आप में नहीं है जो प्रेमचन्द जी में थी, परन्तु भाषा की रवानी खूब है और अपनी बात को कहने का ढंग भी रोचक तथा हृदयग्राही है। भाषा सरल और मुहावरेदार है।

पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र'—'उग्र' जी के साहित्य पर उपन्यास-रचना के अन्तर्गत विचार करते समय हम स्पष्ट कर चुके हैं कि आपका साहित्य सामाजिक कुरीतियों के खिलाफ एक विद्रोह के रूप में सामने आता है। आपने देश-प्रेम, हिन्दू-मुस्लिम एकता तथा अन्य सामाजिक और राजनैतिक विषयों पर रचनाएँ कीं। समाज में फैली कुरीतियों का भंडाफोड़ किया, आडम्बरपूर्ण रूढ़ियों पर कुठाराघात किया, खोखली आदर्शवादिता की पोल खोली और उसके फलस्वरूप उनका उग्रवादी

स्वरूप और भी चमत्कृत हो उठा। आपने समाज के सड़े-गले अंगों को आदर्शवाद के प्रकाश में न देखकर उनके वास्तविक अंधकार-रूप में ही देखने का प्रयास किया है और घोर यथार्थवादी दृष्टिकोण से उन्हें उन पर अन्याय करने वाले वर्ग के प्रति उभारा है। हिन्दी कहानी के क्षेत्र में आपने बहुत से प्रयोग किये हैं और बहुत सी शैलियों में रचनाएँ की हैं। आपकी बहुत सी कहानियाँ विश्व-साहित्य के समक्ष पूर्ण सम्मान के साथ रखी जा सकती हैं। आपकी कहानियों के कई संग्रह—'दोजख की आग', 'चिनगारियाँ', 'बलात्कार', 'सनकी अमीर' इत्यादि प्रकाशित हुए हैं।

आचार्य चतुरसेन शास्त्री—'रजकण', 'अक्षत', 'दुखवा मैं कासे कहूँ मोरी सजनी', 'भिक्षुराज', 'दे खुदा की राह पर', 'नवाब ननकू', इत्यादि आपकी कहानियों के संग्रह हैं। शास्त्री जी भाषा के अधिकारी कलाकार हैं और 'उग्र' जी की ही भाँति समाज के कुरूप अंगों को उभारकर सामने लाने का प्रयास करते हैं। परन्तु आपके चित्रण अतिरंजित होकर कुरूप हो जाते हैं और उनमें वह कसाव नहीं रहता जो 'उग्र' जी की रचनाओं में मिलता है। समाज का नग्न चित्र चित्रित कर देना मात्र ही कला नहीं है, उसमें प्रभावात्मकता भर देना एक दूसरी ही बात है। फिर भी शास्त्री जी की कुछ कहानियाँ काफी रोचक और सुन्दर बन पड़ी हैं। टैकनीक की दृष्टि से भी हमें शास्त्री जी की कहामियों में कोई विशेष प्रयोग दृष्टिगोचर नहीं होता।

जैनेन्द्र कुमार—मुंशी प्रेमचन्द के पश्चात् पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र' और उनके बाद कथा-साहित्य में जैनेन्द्रकुमार का नाम आता है। जैनेन्द्र के कथा-साहित्य में हमें उनके चित्रित पात्रों के अंतर और बाहिर जगत दोनों का दर्शन होता है। कहानी को केवल मनोरंजन के क्षेत्र से ऊपर उठाकर जैनेन्द्र जी ने उसे चिंतन और मनोवैज्ञानिक-विश्लेषण के स्तर पर रखा है। इसके फलस्वरूप जहाँ एक ओर वह अपने साहित्य का

स्तर ऊँचा उठाते हैं वहाँ दूसरी ओर उनका सम्बन्ध साधारण जीवन से टूटता प्रतीत होता है। उनकी रचनाएँ साधारण जीवन की उपयोगिता भी खोती चली जाती हैं और जिन विशेष परिस्थितियों का चित्रण वह करते हैं उनसे समाज का सम्बन्ध टूट जाता है और वे कहानियाँ मानव-जीवन की भावना को उद्वेलित न करके केवल दिमागी चेतन, अवचेतन और अचेतन परतों में ही उलझी रह जाती हैं। फिर भी यह मानना ही होगा कि मानसिक क्रियाओं और प्रतिक्रियाओं के अंतर्द्वन्दों का जैसा सजीव चित्रण जैनेन्द्र जी के कथा-साहित्य में मिलता है वैसा हिन्दी में अन्यत्र दुर्लभ है। चरित्र-चित्रण की दिशा में जितनी गहराई तक जाने का प्रयास जैनेन्द्र ने किया है उतना हिन्दी के अन्य किसी भी कहानीकार ने नहीं किया। जैनेन्द्र जी का मनोविश्लेपण का अपना ही ढंग है। जैनेन्द्र जी की लेखन-शैली में आकर्षण है, तत्व की पकड़ है और चित्रण की सफलता है। आपने सैकड़ों कहानियाँ लिखी हैं और सात भागों में उनका प्रकाशन किया है।

इलाचन्द्र जोशी—जोशी जी की कहानियों के चार संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। आपकी रचनाओं पर फ्रायड के मनोविज्ञान का स्पष्ट प्रभाव है। जैनेन्द्र जी के समान स्वतंत्र चिंतन और मनोविश्लेषण की क्षमता हमें जोशी जी के साहित्य में नहीं मिलती। आपकी अनुभूति फ्रायड के काम-विज्ञान सम्बन्धी विक्षिप्त और कुंठाग्रस्त मानव-विश्लेषणों से अनुप्राणित होकर चलती है। इसके फलस्वरूप इनके पात्र असामाजिक और स्वार्थी हो जाते हैं और उनमें किसी प्रकार का भी उत्तरदायित्व देखने को नहीं मिलता। इनका रुग्ण मानव अपने पात्रों में भी रुग्ण सत्य की खोज करता है और इनका यथातथ्य प्रकृतिवादी चित्रण ऐसे पात्रों का आँकालन बन जाता है कि जिनका समाज में कहीं अस्तित्व नहीं मिलता। ये पात्र कहानीकार के दिमागी अमानव कठपुतले बनकर तैयार हो जाते हैं, जिनका मानव-जीवन के सत्य से लेश मात्र भी सम्बन्ध स्थापित नहीं किया जा सकता। मानव की उदात्त भावनाओं

का समावेश उनमें होता ही नहीं। यह मूलवस्तु की अनुपस्थिति, रुग्ण-चिंतन, कुंठाग्रस्त मनोविज्ञान की ठनक, जघन्य और असामाजिक वस्तु-विन्यास कलाकार की रचनाओं को कहाँ ले जायगा, यह कहना कठिन है। भाषा का सौंदर्य और शैली का घुमाव-फिराव, दस-पाँच योरोपीय विद्वानों का नामोल्लेख, संकेत-कथन, उक्ति-निरूपण और अन्य किसी भी प्रकार का पांडित्य-प्रदर्शन सब व्यर्थ हो जाता है जब मूलवस्तु अशक्त, अपूर्ण और पथ-भ्रष्ट है। फ्रायड की मान्यताओं से जन्म लेकर आने वाले पात्र सामाजिक विद्रूप कहे जा सकते हैं, स्वस्थ मानव नहीं, और उनके मूल्यांकन का साहित्य भी इसी प्रकार उच्च कोटि का साहित्य नहीं बन सकता। लेखक की यह उच्छ्रंखल प्रवृत्ति सामाजिक जीवन का सही मूल्यांकन करने में असफल रह जाती है। जोशी जी के कथा-संग्रह 'रोमांटिक और छाया', 'आहुति और दीवाली', 'आहुति' इत्यादि प्रकाशित हो चुके हैं। ये कहानियाँ न तो अधिक प्रभावत्मक ही हैं और न रोचक ही। इनके मनोविज्ञान की क्या दशा है यह ऊपर स्पष्ट कर चुके हैं।

अज्ञेय—अज्ञेय जी की कहानियों की दशा भी ठीक जोशी जी के ही समान है। तथाकथित क्रान्तिकारी होने के नाते तथाकथित परिवर्तन चाहे कहीं भले ही दीख पड़े परन्तु मूल में कोई अन्तर नहीं है। इनके अंदर भी स्वतंत्र मानसिक विश्लेषण के दर्शन नहीं होते। पराये विचारों के पंडित बनकर हिन्दी पर पांडित्य लादने का असफल प्रयास आपने भी हिन्दी कहानी-क्षेत्र में किया है। 'विपथ्या', 'परम्परा', 'कोठरी की बात', और 'जयदोल' आपकी कहानियों के संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। 'प्रेमचन्द', 'उग्र' और 'जैनेन्द्र' की कहानियों के समकक्ष उन्हें न तो कथा-वस्तु के विचार से ही रखा जा सकता है और न विश्लेपण की ही दृष्टि से।

पहाड़ी—पहाड़ी जी का कथा-साहित्य भी इसी लड़ी का एक मनका है। अर्ध सत्य और असत्य में ही मानव की स्थिति को कबूल

करके अर्धचेतन काम-वासनाओं के मध्य मानव की स्थिति को स्थापित करने का पहाड़ी जी ने प्रयास किया है। आपकी कहानियों का भी दृष्टि-कोण स्वस्थ नही है, भ्रष्ट है, असामाजिक है।

जैनेन्द्र जी मनोवैज्ञानिक बन कर समाज के एकान्तवासी प्राणी बने, अपने ही अन्दर सीमित; जोशी और अज्ञेय जी फ्रायडियन काम-मनोविज्ञान के विश्रृंखलित विचारक बने और पहाड़ी जी इनसे भी दो पग और आगे बढ़ गये।

यशपाल—यशपाल जी का नाम हिन्दी कहानी-संसार में प्रेमचन्द, 'उग्र' और जैनेन्द्र के बाद विशेष महत्वपूर्ण है। आपके लगभग दस कहानी-संग्रह 'वो दुनिया', 'ज्ञान-दान', 'धर्म-युद्ध', 'तर्क का तूफान', 'चित्र का शीर्षक', 'फूलों का कुर्त्ता' इत्यादि प्रकाशित हो चुके है। यशपाल जी की अधिकांश कहानियाँ मानवतावादी व्यापक सत्य से अनुप्राणित होकर लिखी गई है। मार्क्सवाद का, वर्ग-विषमता को हटाकर समता-स्तर पर विश्व के एक समाज की कल्पना उनके साहित्य का मूल-मंत्र है। इसमें राष्ट्रीयता भी है, सामाजिकता भी और व्यक्ति को भी हर प्रकार की मान्यता दी गई है। आपने अपनी कहानियों में मानव-समाज के विविध चित्र प्रस्तुत किये हैं, समस्याएँ उठाई है और सुलझाई हैं, मानवतावादी सिद्धान्त के आधार पर। सामाजिक विषमता के कारण मनुष्य की विषमताओं को लेकर जो मानव के मनोभावों पर आन्दोलित विचार-धारा होती है और उसके फलस्वरूप जो विचारों का द्वन्द मस्तिष्क में उठता है उसके मूल्यांकन और चित्रण में यशपाल को कलाकारिक सफलता मिली है। 'यशपाल जी' समाज की वर्ग-प्रधान स्थिति से विद्रोह करते हैं। सामाजिक द्वैत के वैषम्य के प्रति जागरूकता पैदा करना वह अपने साहित्य का मुख्य लक्ष्य समझते हैं। यह विचार-धारा-प्रधान साहित्य है। इसका महत्व विचार की दृष्टि से 'अज्ञेय', 'इलाचन्द जोशी' और 'जैनेन्द्र' के साहित्य से कहीं अधिक है। इस साहित्य

का उद्गम श्रोत एक विश्व-व्यापी मानवता की भावना है, कोरी कला की कहानियाँ मात्र नही। ये कहानियाँ लेखक के विचारों और उसकी भावनाओं को प्रसारित करने का साधन मात्र है। जहाँ तक बात कह जाने के ढंग का सम्बन्ध है, वहाँ यशपाल जी यथार्थवादी चरित्र-चित्रण-प्रधान शैली को अपनाते है। भाषा आपकी प्रौढ़ और व्यंग्य-प्रधान होती है। असामाजिक विषमता पर आप खुलकर व्यंग्य कसते है। राजनैतिक व्यंग्यों की जो चुटखियाँ यशपाल जी के कहानी-साहित्य मे मिल जायेंगी वे अन्य किसी भी हिन्दी-कहानीकार की शैली में नही मिलतीं।

यहाँ तक के कहानी-साहित्य पर एक बार फिर दृष्टि डाल लेना बुरा नहीं। देखने पर स्पष्ट ही है कि 'प्रसाद, प्रेमचन्द', पाडेय बेचन शर्मा 'उग्र', जैनेन्द्रकुमार, इलाचन्द जोशी और यशपाल के नाम हिन्दी कहानी-साहित्य की अमर थातियाँ हैं। इन लेखकों और विचारकों ने अपने कहानी-साहित्य के द्वारा कुछ बातें कहीं हैं और उनका प्रभाव भी देश के हिन्दी कहानी-पाठकों पर पड़ा है। यह प्रभाव यदि सत्य है और मानव-कल्याण की दिशा की ओर अग्रसर है तो निश्चित रूप से बढ़ता जायगा। शब्दों का आडम्बर या शैलियों का विकास विचार पर प्रधानता नहीं पा सकता। कबीर की बानियों का महत्व भाषा-चमत्कार, शैली-चमत्कार और सगीत-रहित होने पर भी आज तक कम नहीं हो पाया।

कल्पना कीजिये उस समय की, यदि आज भारत का बच्चा-बच्चा सुशिक्षित होता और वह जानता कि हमारे देश के अमुक उच्च-कोटि के विचारक कलाकारों का समाज और राष्ट्र के विषय में यह मत है, तो राष्ट्र पर कितना व्यापक प्रभाव होता उन रचनाओं का। और उत्तर-दायित्व भी कितना घना होता उस कलाकारों का अपने राष्ट्र के प्रति। फ्रायडिस्ट क्रांतिकारिता राष्ट्र के नौजवानों को विकृत, कुंठित और कामासक्त करके समाज का निरर्थक अंग बना सकती है। कितनी घातक प्रतिक्रिया हैं अपनी विचार-धारा न रखने वाले, अपना कोई दृष्टिकोण न बना सकने वाले असफल कलाकारों की। हिन्दी-कहानी का गद्य-साहित्य

इस क्रिया और प्रतिक्रिया के पूरे विकास को अपने अन्तर में समोये हुए हैं।

ऊपर दिये गये कहानीकारों के अतिरिक्त भी हिन्दी में कई अन्य प्रतिभासम्पन्न कहानीकार हैं जिनकी मूल्यवान रचनाओं ने हिन्दी के कहानी-गद्य को परिपुष्ट किया है। **राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह, पं० ज्वालादत्त शर्मा, बाबू शिवपूजनसहाय, शिवनारायण द्विवेदी, विनोदशंकर व्यास, चण्डीप्रसाद 'हृदयेश', पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी, प्रफुल्लचन्द ओझा, ठाकुर श्रीनाथसिंह, गोविन्दबल्लभ पन्त, मोहनलाल महतो 'वियोगी', कमलाकान्त वर्मा,** चन्द्रगुप्त विद्यालंकार, वाचस्पति पाठक, देवेन्द्र सत्यार्थी, भगवती चरण वर्मा, ऋषभचरण जैन, सद्गुरुशरण अवस्थी, प्रेमचन्द, कमला चौधरी, होमवती, उषादेवी मित्रा, सुमित्राकुमारी सिन्हा, सत्यवती मल्लिक, आरसीप्रसाद सिंह, भुवनेश्वर प्रसाद सिंह, अन्नपूर्णानन्द, रांगेय राघव, अमृतराय, रामचन्द्र तिवारी, प्रभाकर माचवे, शम्भूनाथ सक्सेना, चन्द्रकिरण सोंरिक्षा के नाम उल्लेखनीय हैं।

हिन्दी गद्य-साहित्य का कहानी-साहित्य उसके सभी अंगों से अधिक पुष्ट है। विश्व के महान् कलाकारों की सर्वोच्च रचनाओं के बराबर हिन्दी-गद्य के कहानी-साहित्य की कई रचनाओं को विशेष सम्मान के साथ रखा जा सकता है।

: ७ :

निबन्ध-साहित्य का विकास

निबन्ध के वर्तमान स्वरूप का भी उपन्यास की तरह विकास पूर्ण-रूप से पश्चिम में ही हुआ। संस्कृत-साहित्य में निबन्ध के प्रकार की रचनाएँ देखने को नहीं मिलतीं। गद्य का विकास पहले योरोप में होने के कारण गद्य-साहित्य की विविध धाराओं का विकास भी पहले वहीं पर हुआ। डाक्टर जॉन्सन ने निबन्ध की परिभाषा देते हुए लिखा है, "मानसिक विश्व का निबन्ध वह थका हुआ बुद्धि-विलास है जिसमें न कोई क्रम है और न कोई नियम। यह विचारों की अधूरी और अव्यवस्थित रचना मात्र है।" परन्तु आज के निबन्ध-साहित्य पर दृष्टि डालने से यह परिभाषा अधूरी ही नही निरर्थक सिद्ध होती है। इसके ठीक विपरीत निबन्ध-साहित्य मे हमे विषय और विचारों का परिमार्जित स्पष्टीकरण मिलता है। 'निबन्ध' का अर्थ है 'बँधा हुआ' अर्थात् सक्षेप में अनावश्यक तूल को छोड़कर, विचारों का स्पष्टीकरण। 'निबन्ध' के विषयों की भी कोई सीमा नहीं है। 'आकाश-कुसुम' से लेकर 'चींटी' तक निबन्ध के विषय बन सकते हैं। निबन्ध व्यापक विषय को संक्षेप में रखने की प्रणाली है। निबन्ध **वर्णनात्मक, भावनात्मक,** और **विचारात्मक** तीन प्रकार के लिखे जा सकते है। इनकी भी उपशाखाएँ व्यक्तिगत विचारों और शैलियो के आधार पर की जा सकती हैं। ये शैलियाँ भाषा-प्रधान, अलंकार-प्रधान, उक्ति-प्रधान, विचार-प्रधान, व्यक्ति-प्रधान, विषय-प्रधान, आलोचनात्मक, मनोवैज्ञानिक, संस्मरणात्मक, चरित्र-चित्रणात्मक इत्यादि बहुत सी धाराओं मे विभक्त की जा सकती है।

कुछ विद्वान् निबन्ध के दो वर्ग 'कलात्मक' और 'तथ्य-निरुपक' करके विषयगत उपभेद आलोचनात्मक निबन्ध, राजनीतिक निबन्ध, ऐतिहासिक

निबन्ध इत्यादि और शैलीगत के अन्दर निबन्ध के भाव और विचार को रखने की चेष्टा करते है, परन्तु यह गलत है। निबन्ध के वास्वत में तीन ही प्रकार हैं—(१) विचारात्मक (२) भावनात्मक और (३) वर्णनात्मक। केवल निबन्ध के ही नहीं समस्त साहित्य के ये ही तीन प्रकार हैं। इनका विकास साहित्य-सृजन की तीन मूल-शक्तियों, विचार, भाव और वर्णन से है। जिन्हें 'कलात्मक' निबन्ध की सञ्ज्ञा दी जाती है वे विचार और भावगत आ जाते हैं और जिनमें तथ्य-निरूपण होता है वे वर्णनात्मक प्रकार के होते हैं। तथ्य को साहित्य बनने के लिए कला का आश्रय लेना होता है अर्थात् विषय को शैलीगत आवरणों की आवश्यकता होती है और ये आवश्यकताएँ रूप-रंग और स्वभाव के अनुसार पृथक्-पृथक् प्रकार की होती हैं। इसलिए शैली और शैलियों के उपभेदों की संख्या गिनाना कठिन है। फिर भी विपयगत, विचारगत, भावगत, भापागत, अलंकार-गत बहुत सी शैलियाँ निर्धारित की जा सकती हैं।

वर्ग, प्रकार और शैली की अधिक उधेड़ बुन न करे और इतना ही समझें कि निबन्ध-साहित्य का क्षेत्र साहित्य की किसी भी धारा से कम व्यापक नहीं है।

हिन्दी-गद्य की अन्य धाराओं की ही भाँति निबन्ध-साहित्य का भी विकास हमें सर्वप्रथम भारतेन्दु के समय में ही मिलता है। पत्र-पत्रिकाओं के प्रकाशन ने निबन्ध-रचना को विशेप प्रोत्साहन दिया। निबन्ध-सम्बन्धी सामग्री हमें अपने परम्परागत आने वाले साहित्य में उपलब्ध न होने से इस धारा के विकास में अपेक्षाकृत अधिक समय लगा और इसका विकास भी धीरे-धीरे हुआ। भारतेन्दु जी ने बंगला और अंग्रेजी-साहित्य में मिलने वाली सभी प्रकार की धाराओं में रचनाएँ लिखकर अन्य लेखकों को उस ओर प्रेरित करने का महत्वपूर्ण कार्य किया।

इस समय के जो निवन्ध हिन्दी में उपलब्ध है उनके देखने से स्पष्ट

है कि इनके लेखकों का मस्तिष्क गहरी चिंताओं से उलझा हुआ नहीं था। हल्की-फुल्की चुटीली भाषा में व्यंग्य-प्रधान निबन्धों की रचना इस काल में हुई। निबन्ध कोई बोझिल धारा बनकर नहीं आया, साहित्य की। इसकी भी ठीक वही दशा थी जो साहित्य की अन्य किसी धारा की हो सकती थी।

भारतेन्दु—भारतेन्दु जी को ही हिन्दी का प्रथम निबन्धकार माना जाना चाहिए। आपका मस्तिष्क उस समय की राष्ट्रीय और सामाजिक-क्रान्ति की चेतना से पूर्ण था। भावनाएँ भी सजग थीं, दृष्टिकोण भी व्यापक था। साहित्य की धाराएँ माध्यम स्वरूप थीं। फलस्वरूप आपने जो निबन्ध-साहित्य लिखा उसमें भी धार्मिक पाखण्डों का खण्डन, अन्ध-विश्वास का विरोध, और देश तथा समाज की उन्नति का मूल सन्देश भरा है। आपकी वर्णन-शैली नाटकीय है और व्यंग्यों का कहीं-कहीं प्रयोग किया है। भारीपन नहीं है कहीं भी, पाठक के मस्तिष्क पर रचना बोझिल नहीं हो उठती। भारतेन्दु जी ने अपने निबन्धों के द्वारा अपने आस-पास के सामाजिक जीवन को छुआ है, जो उस समय के समाज का प्रतीक था। प्रादेशिक रीति-रिवाजों को छुआ है, समाज के पतन को देखा है और राजकीय कर्मचारियों की घृणास्पद कार्य-वाहियाँ देखकर उनके दिल में जो कसम पैदा हुई है उसे निबन्धों के रूप में प्रकट किया है।

भारतेन्दु जी की रचना-प्रणाली से प्रभावित होकर **बालकृष्ण भट्ट, प्रतापनारायण मिश्र, प्रेमघन, बदरीनारायण चौधरी, ज्वालाप्रसाद, अम्बिकादत्त व्यास, तोताराम, राधाचरण गोस्वामी** इत्यादि लेखकों ने सामाजिक, नैतिक, धार्मिक, राजनैतिक विषयों पर रचनाएँ की। इन निबन्धों में रोचकता थी, सरलता थी और व्यग्य-चोट करने की क्षमता थी, पांडित्य-प्रदर्शन नहीं था। साहित्यिक-परिभाषा में जकड़ा हुआ नहीं था निबन्ध। इस काल के निबन्ध, सांस्कृतिक, प्राकृतिक-चित्रण, जीवन-चरित्र, पर्व-त्यौहार और इतिहास सम्बन्धी होते थे।

बालकृष्ण भट्ट—आपके निबन्धों में स्वतंत्र विचारधारा मिलती है। मनोवैज्ञानिक विश्लेषण के साथ समाज और राष्ट्र की दशा को आपने परखा है और भावना तथा व्यंग्य-प्रधान शैली में चित्रण किया है। विषयों की विविधता आपके निबन्धों में पाई जाती है। आपने अपनी रचनाओं पर व्यक्तिगत रुचि और स्वभाव की भी मनमानी छाप लगाई है। तर्क आपके निबन्धों में खूब रहता है परन्तु क्रमबद्धता की कमी है। आपके पत्र 'हिन्दी-प्रदीप' के द्वारा आपके निबन्धों का काफी प्रसार हुआ।

प्रतापनारायण मिश्र—आपके निबन्धों पर आपके फक्कड़पन की गहरी छाप पड़ी। आपने स्वच्छन्द स्वभाव होने के साथ-साथ वृत्ति भी विनोद-प्रिय प्राप्त की और उसका प्रभाव आपके लेखों पर पड़ा। ग्रामीण कहावतों और मुहावरों को आपने अपनी रचनाओं में स्थान दिया। कहीं-कहीं बैसबाड़ी शब्दों का भी प्रयोग मिलता है। आपकी शैली पर भी आपके व्यक्तित्व का स्पष्ट प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। 'धोखा', 'बालक', 'दाँत', 'भौं' इत्यादि बहुत आम किस्म के आपके निबन्धों के शीर्षक होते थे। परन्तु इन्हीं साधारण शीर्षकों के अन्दर वह अपनी विचार-धारा को ले आते थे। आपके निबन्धों के 'प्रताप-समुच्चय', 'प्रताप-पियूष' और 'निबन्ध-नवनीत' तीन संग्रह प्रकाशित हुए।

निबन्ध-साहित्य का यह प्रथम उत्थान था। इसमें निबन्ध गम्भीर चिंतन का माध्यम नहीं बना था। परन्तु विश्व का चिंतनशील प्राणी दर्शन और विज्ञान को लेकर काफ़ी आगे बढ़ गया था। विज्ञान का विकास केवल भौतिक जगत् और प्रकृति तक ही सीमित नहीं रहा। मानव से सम्बन्धित मनोविज्ञान के आधार पर मानव-विश्लेषण की विविधरूपता सामने आई। राजनीति को भी लेकर विश्व में एक उथल-पुथल हो रही थी। मानवतावाद, व्यक्तिवाद, समाजवाद और वादों के भी उपवाद खड़े हो गये थे।

साहित्य इन्हीं विचारधाराओं से अनुप्राणित मानव की कला-सृष्टि है। साहित्य की कुछ धाराएँ चित्रांकन करती हैं तो कुछ विवेचना, विश्लेषण और ज्ञान का प्रसार करती है। साहित्यकारों ने निबन्ध को चित्रांकन का माध्यम न बनाकर विचार-विवेचन, विश्लेषण और ज्ञान-प्रसार का साधन बनाया।

हिन्दी-साहित्य में 'सरस्वती' पत्रिका के प्रकाशन ने निबन्ध-साहित्य के विकास और परिमार्जन में विशेष योग दिया। साहित्य के गम्भीर विषयों को निबन्धों का विषय बनाया। आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी ने १९०३ में इसका सम्पादन संभाला। हिन्दी-भाषा में गम्भीर विषयों के लेखन की क्षमता लाने की दिशा में आपने अपनी सम्पादन-कुशलता से महत्वपूर्ण योग दिया। भाषा में एक-रूपता लाने के लिए आपने अनथक प्रयास किया।

फलतः भारतेन्दु-कालीन निबन्धों की हल्की-फुल्की शैली के लिए साप्ताहिक पत्रों का क्षेत्र अधिक उपयुक्त था, वही उन्हें चुनना पड़ा और मासिक पत्रों के निबन्ध गम्भीर चिन्तन की ओर झुक गये। विश्व का चेतना-स्वरूप ज्ञान, दर्शन और मनोविज्ञान की धाराओं से अनुप्राणित होकर हिन्दी निबन्ध-साहित्य में विकसित हुआ। साप्ताहिक पत्रों के निबन्धों में, जिनका नामकरण आज की भाषा में 'निबन्ध' न होकर 'लेख' है, वही पुरानी ज़िन्दादिली, नोकझोंक, चुटीलापन, वर्णनात्मक प्रवृत्ति रही, परन्तु मासिक पत्रों में सुगढ-साहित्यिक निबन्ध छपने लगे।

महावीरप्रसाद द्विवेदी—द्विवेदी जी का महत्व हिन्दी निबन्ध-साहित्य के विकास में मौलिक रचनाओं के सहयोग के लिए उतना नहीं है, जितना भाषा और निबन्धों के सम्पादन की दृष्टि से है। आपने अधिकांश रूप में विदेशी निबन्धकारों के अनुवाद हिन्दी में प्रस्तुत करके हिन्दी-लेखकों के विचार-स्तर को ऊपर उठाया, गागर में सागर भर देने वाले 'बेकन' के निबन्धों का अनुवाद किया और उनकी लेखन-शैली का हिन्दी-साहित्य को परिचय मिला।

महावीरप्रसाद द्विवेदी के बाद इस समय के निबन्धकारों में बाबू श्यामसुन्दर दास, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पं० पद्मसिंह शर्मा, मिश्रबन्धु तथा बाबू गुलाबराय के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। इन निबन्धकारो के निबन्धों का विषय प्रधानतया सिद्धान्त और आलोचना ही रहा है। साहित्य का जो ललित स्वरूप निबन्ध की धारा के अतर्गत प्रवाहित हुआ वह इनके निबन्धों में नहीं था। साहित्य का यह क्लिष्टतम रूप था और इसी का अधिक प्रसार भी हुआ। परन्तु यह प्रसार निबन्ध-रचना की दिशा में हुआ, निबन्ध-पठन की दिशा में नहीं। साहित्य की सुन्दर कला-कृति के रूप में निबन्ध-पुस्तक को छूना भी साहित्य-प्रेमियों के लिए कठिन हो गया। निबन्ध के प्रति पाठक की धारणा ही यह बन गई कि वह मनोरंजन और भावना का साहित्य नही है, दिमागी कसरत की दिशा है। इस विचारधारा के फलस्वरूप निबन्ध-साहित्य का कलात्मक विकास रुक सा ही गया। यों नाम लेने के लिए और निबन्ध-साहित्य की कलात्मक धारा के प्रवाह को रुक जाने से बचाने के लिए **सरदार पूर्ण सिंह, चन्द्रधर गुलेरी, माधवप्रसाद मिश्र** इत्यादि के नाम लिए जा सकते है, परन्तु इनके निबन्धों को आचार्य **रामचन्द्र शुक्ल, पंडित** पद्मसिंह और **गुलाबराय** जैसे मौलिक विचारकों के निबन्धो के साथ रख कर देखने पर, उनका विकास-क्रम बहुत पीछे का दिखाई पड़ता है। इन निबन्ध-कारों की रचनाएँ भी परिमाण में बहुत ही कम हैं।

बाबू श्यामसुन्दर दास—निबन्ध-साहित्य में **महावीरप्रसाद द्विवेदी** के बाद बाबू श्यामसुन्दर दास का नाम आता है। आपने अपने निबंधों में साहित्य और जीवन की गहन समस्याओं को ही लिया है और इसीलिए निबन्ध भी गम्भीर बन गये हैं। परन्तु फिर भी आपने अपनी मौलिक और सरल विवेचन-शैली के द्वारा कठिन-विषयों का भी सुन्दर और कलात्मक स्पष्टीकरण किया है। साहित्य की दृष्टि से आपके निबन्ध आचार्य **महावीरप्रसाद द्विवेदी** के निबन्धों से बहुत अधिक महत्वपूर्ण हैं। विषय आपने सभी मौलिक नही लिए और न आपका विवेचन ही मौलिक

है, परन्तु गम्भीर ज्ञान का चयन करके उसे अपने ढंग से हिन्दी में प्रविष्ट करने का आपका सफल प्रयास रहा है और इससे हिन्दी निबन्ध-साहित्य का महान् हित हुआ। अन्य लेखकों के लिए निबन्धों की दिशाएँ खुली है, विषयों के चिंतन की दिशाएँ खुलीं हैं। जैसे गम्भीर विषयों को आपने अपने निबन्धों का विषय बनाया वैसी ही भाषा का भी आपने प्रयोग किया।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल—निबन्ध-साहित्य विकासोन्मुख था। उसके हिन्दी स्वरूप को परिमार्जित करने की दिशा में आचार्य महावीर-प्रसाद द्विवेदी और श्यामसुन्दर दास ने प्रयास किया, परन्तु उसे वे महत्व-पूर्ण रूप नहीं दे पाये। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इस कमी की पूर्ति की और निबन्ध-साहित्य को चिंतन प्रधान भावनापूर्ण मानव के विचारों के कलात्मक स्पष्टीकरण का माध्यम बनाया। आपने साहित्य और जीवन से सम्बन्ध रखने वाले प्रश्नों पर भावना और विचार मे सामंजस्य स्था-पित करके विचार किया और उन विचारों को अपने निबन्ध-साहित्य में कलात्मक रीति से ढाल दिया। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के विचारों और उनकी भावनाओं का जैसा सुन्दर दिग्दर्शन उनके निबन्धों में होता है वैसा अन्यत्र नहीं मिलता।

भाषा-शैली के विचार से आपने निबन्धों को गम्भीर रूप अवश्य दिया है परन्तु उनमें श्यामसुन्दर दास जी के निबन्धों जैसी नीरसता और शुष्कता नहीं है। गम्भीर विवेचनों में सुन्दर चुटकियाँ और व्यंग्य-विनोद उनके निबन्धों में भरा पड़ा है परन्तु भाषा गम्भीर होने के कारण उनके निबन्ध भी आज पाठकों में निबन्ध-साहित्य के प्रति कोई रुचि पैदा नहीं करते। इससे ठीक विपरीत साहित्य के ज्ञान-भंडार को भरने और साहित्य को मौलिक सुझाव देने की दिशा में इन निबन्धों का महत्वपूर्ण योग है। आपने विचारात्मक और कलात्मक, दोनों प्रकार के निबन्ध लिखे हैं। 'चितामणि' में 'चिंता', 'श्रद्धा', 'क्रोध' इत्यादि मानव की प्रवृत्तियाँ को

लेकर लिखे गये निबन्धों का संग्रह है। इनकी रचना व्याख्यात्मक ढंग से की गई है। कलात्मक निबन्धों में सैद्धन्तिक और आलोचनात्मक दो प्रकार के लेख आपने लिखे हैं।

सरदार पूर्णसिंह—सरदार पूर्णसिंह के निबन्ध विशुद्ध कलात्मक हैं। उनमें सिद्धान्त या आलोचना की कटुता नहीं है। उनमें तो भावना का मिठास है और इसीलिए इनके निबंधों का विकास भी विश्व की मानवतावादी विचारधारा से सुसंचालित हुआ। आपने अपने निबंधों में चित्रांकन पर विशेप बल दिया है। 'सच्ची वीरता', 'आचरण की सभ्यता' इत्यादि आपके निबन्ध हैं।

चन्द्रधर गुलेरी ने अपने एक-दो निबन्धों में समाज की रूढिवादिता पर करारी चोट की है। 'मारेसि मोहि कुठाँव', 'कछुआ धर्म', 'संगीत' विषयों पर आपके निबन्ध हैं। **माधव मिश्र** के निबंध 'त्यौहारों' इत्यादि पर है।

गुलाबराय—आपके निबन्ध व्यक्तिगत जीवन-सम्बन्धी तथा सैद्धान्तिक हैं। भाषा आपकी भी क्लिष्ट ही होती है। सिद्धान्त-निरूपण की दिशा में आपका कोई विशेप मौलिक दिशा-दर्शन नहीं है, विचारसंचयात्मक प्रवृत्ति ही मिलती है।

इनके अतिरिक्त **'प्रसाद', 'निराला', 'महादेवी', पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी, सियारामशरण गुप्त** इत्यादि ने इस काल में साहित्यिक रचनाएं की हैं। इनमें **पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी** के निबंध अधिक व्यापक क्षेत्र को लेकर चलते हैं। साहित्य, धर्म, जीवन और समाज सभी पहलुओं को आपने अपने निबन्धों का विपय बनाया है।

यहाँ तक के निबन्ध-साहित्य पर दृष्टि डालने से यह स्पष्ट हो जाता है कि राष्ट्र और समाज के जीवन में जो वैज्ञानिक और मनोवैज्ञानिक चिंतन की विविधरूपता इस काल में आई थी उसका वैसा पूर्ण उपयोग हिन्दी-निबन्ध-साहित्य न कर सका जैसा उपन्यास, कहानी, नाटक इत्यादि

के क्षेत्र में हुआ। निबंध का विकास सैद्धान्तिक और आलोचनात्मक क्षेत्रों तक ही सीमित रहा।

खेद का विषय है कि हिन्दी के निबन्धकार अपनी इस कूप मंडूकता की प्रवृत्ति को अपने पांडित्य की कसौटी समझते चले जा रहे हैं, अपनी रचनाओं के विकास को सीमित करते चले जा रहे हैं। सूक्ष्म की ओर उनकी प्रवृत्ति है और साहित्यकार से दार्शनिक का पद उन्हें अधिक आकर्षित करता है। मानव-स्तर से ज़रा ऊपर से बोलने में उन्हें आत्मिक सुख तथा शांति का अनुभव होता है, परन्तु वह रचना-साहित्य की कोटि से बाहर निकल जाती है, जिसमें आनन्द की अनुभूति नहीं, वह चिंतन नहीं जो आत्मा को उत्साह और ज्ञान प्रदान न करें, लघुता और हीनता की भावना को उसमें न आने दे।

जैनेन्द्रकुमार का विचार-दर्शन उनके निबन्धों का विषय रहा है। सामाजिक प्रश्नों को लेकर भी आपने एक-दो निबन्ध लिखे हैं।

निबन्ध के क्षेत्र मे आचार्य हज़ारीप्रसाद द्विवेदी का स्थान भी महत्व-पूर्ण है। साहित्य, समाज, संस्कृति, इत्यादि दिशाओं का आपकी रचनाओं में प्रकाश मिलता है। 'कल्पलता', 'अशोक के फूल', आपके निबन्धों के संग्रह हैं।

निबन्ध-क्षेत्र में इधर दस-बारह वर्ष के अन्दर काफ़ी प्रगति हुई है, परन्तु विकास कला-पक्ष की तरफ न होकर आलोचना पक्ष की तरफ़ ही अधिक हुआ है। पुराने लेखकों में **आचार्य चतुरसेन शास्त्री, रायकृष्णदास, वियोगी हरि, माखनलाल चतुर्वेदी** के नाम उल्लेखनीय हैं। **पं० पद्मसिंह शर्मा, बनारसीदास चतुर्वेदी, मोहनलाल महतो 'वियोगी'** ने संस्मरणात्मक लेख लिखे हैं। **'राहुल', सदगुरुशरण अवस्थी भदन्त आनन्दकौशल्यायन, देवेन्द्र सत्यार्थी, डा० नगेन्द्र, डा० रामविलास शर्मा, प्रकाशचन्द्र गुप्त, रामवृक्ष बेनीपुरी, प्रभाकर माचवे, रामचरण महेन्द्र, जानकी वल्लभ शास्त्री, मुरली मनोहर, डा० सत्येन्द्र, उदयशंकर**

भट्ट इत्यादि हिन्दी के विद्वानों ने निबन्ध-साहित्य के भंडार की पूर्ति की है।

निबन्ध-साहित्य के इन लेखकों ने विश्व-चेतना के ऐतिहासिक और सैद्धान्तिक रूपों को लेकर अपने विश्लेषणों द्वारा अपने निबंध-साहित्य मे प्रसारित करने की दिशामें जो पग बढ़ाया है उसमें उन्हे काफी सफलता मिली है। परन्तु फिर भी इतना तो मानना ही होगा कि निबन्ध का विकास मौलिक कला-साहित्य के रूप में बहुत ही कम हो पाया है। निबन्ध-साहित्य की रचना विशेष रूप से किसी अन्य प्रयोजन के लिए हुई है। निबन्ध स्वयं बहुत कम निबन्धकारों का प्रयोजन बना है। हिन्दी का निबन्ध-साहित्य आज भी एक विशेष साहित्यिक वर्ग का साहित्य है, विचार का विशाल ख़जाना होने पर भी आम पाठक का उससे कम ही सम्बन्ध है। आचार्य निबन्धकारों को चाहिए कि वे अपनी विचार और भाषा की गुत्थियों से बाहर निकाल कर मुक्त वातावरण में श्वाँस लें। राष्ट्र और समाज के सामने फैली हुई समस्याओं को अपने निबन्धों का विषय बनायें। प्राचीन और सिद्धान्त पर प्रकाश डालना तभी उपयोगी है जब उसके प्रकाश में वर्तमान का मूल्यांकन हो सके और उसका स्पष्टीकरण भी कलात्मक ढंग से व्यापक से-व्यापक रूप में हो।

: ८ :

आलोचना-साहित्य का विकास

साहित्य की रचना और फिर आलोचना सामने आती है। भरत-मुनि का नाट्य-शास्त्र संस्कृत-साहित्य के आचार्य-पद्धति का आलोचना-साहित्य है। आलोचना का यह प्रारम्भिक स्वरूप है। हिन्दी-साहित्य को संस्कृत-साहित्य से जो साहित्यालोचन की पद्धति मिली वह सैद्धान्तिक आलोचना की पद्धति थी।

भरतमुनि के पश्चात् संस्कृत के आचार्यों ने **रस, अलंकार, ध्वनि, रीति** और **गुणों** के आधार पर काव्य की श्रेष्ठता और हीनता के अपने-अपने पृथक्-पृथक् सिद्धान्तों का निर्माण किया। और फिर स्वनिर्मित सिद्धान्तों के आधार पर साहित्य-रचना की प्रेरणा दी। इनकी प्रेरणा और इनके चमत्कारवादी पांडित्य से प्रभावित होकर, इनके सिद्धान्तों की पुष्टि के लिए जो साहित्य-रचना हुई वह उच्च कोटि का मौलिक-साहित्य न बन सका। यह साहित्य उस मौलिक साहित्य को जिसके आधार पर इन साहित्य-सिद्धान्तों का निर्माण हुआ था छू तक न सका।

इस प्रकार कविता-साहित्य में साहित्य के दो रूप बन गये। पहला साहित्य का मौलिक स्वरूप था और दूसरा उसकी सैद्धान्तिक आलोचना। हिन्दी-साहित्य में भी हमें ठीक ऐसी ही परिस्थिति दिखाई देती है। कबीर, जायसी, तुलसी और सूर हिन्दी-साहित्य के मौलिक रचनाकारों में से हैं। इनके ठीक विपरीत इनकी ही मान्यताओं पर, इनके ही आधारों को लेकर, विभिन्न पृष्ठ-भूमियों पर आचार्य साहित्यकारों ने अपने साहित्य का निर्माण किया। इन साहित्यकारों में केशव, बिहारी, देव, मतिराम और भिखारीदास के नाम उल्लेखनीय हैं। इन साहित्यकारों ने साहित्य

को साधारण से असाधारण की दिशा दी, जनता से उठाकर साहित्य को राजमहलों की महफ़िलों या रंग-महलों की चुहल का साधन बना दिया। तुलसी के लोक हितकारी स्वरूप राम और सीता तो दूर ही रहे राधा और कृष्ण का भी बाल स्वरूप उन्हें आकर्षित न कर सका। इन आचार्यों ने साहित्य को जहाँ एक ओर अलंकार, गुण-दोष इत्यादि भाषागत बन्धनों में जकड़ा वहाँ दूसरी ओर उसके सामाजिक और राष्ट्रीय विकास का भी अन्त कर दिया। ये रीतिकाल के साहित्याचार्य थे जिन पर संस्कृत आचार्यों की पूरी-पूरी छाप थी। कोई अलंकार-सिद्धान्त का पोषक था तो कोई ध्वनि के बिना साहित्य को साहित्य नहीं मानता था और कोई वक्रोक्ति को ही साहित्य का प्राण मान बैठा था तो कोई रीति-साहित्य में निमग्न था। सभी अपनी-अपनी दिशाओं में महत्वपूर्ण थे, डाक्टर थे अपने-अपने विषय के।

साहित्य निर्माण और साहित्य-निर्माण के सिद्धान्तों का विकास हो रहा था। आलोचना-साहित्य के विकास में इस आचार्य-वर्ग का अपूर्व योग है, विश्लेषण की दृष्टि से महत्वपूर्ण कार्य है, परन्तु यह विश्लेषण भाव और भाषा तक ही सीमित रहा। विषय एक ही था उनके पास और वह था आनन्द; जो आनन्द साहित्य के परमानन्दी सिंहासन से उतर कर भौतिक आनन्द की सेज पर कर्तव्य विमुख होकर आ लेटा था। हिन्दी के इस आचार्य वर्ग ने संस्कृत-आचार्यों से आगे बढ़कर कोई नया सिद्धान्त उपस्थित नहीं किया। इस समय तक साहित्य की कसौटी के रूप में केवल रस और अलंकार को ही प्रधान स्थान मिला। इसका सम्बन्ध मानव-हृदय से है और और अलंकार का भाषा से। भाषा को मनुष्य ने जन्म दिया है, इसलिए प्रथम स्थान रस का होना चाहिए, न कि भाषा का। हुआ भी अन्त में ऐसा ही। 'भामह' और 'उद्भट' संस्कृताचार्यों के प्रतिपादक 'केशव' का अलंकार-सिद्धान्त हिन्दी-साहित्य में अमान्य हुआ और चिन्तामणि त्रिपाठी का अनुसरण। चिन्तामणि त्रिपाठी ने काव्य के सब अंगों का निरूपण किया। किसी एक अंग को सम्पूर्ण

साहित्य नहीं माना। 'काव्य-विवेक', 'कविकुल कल्पतरु' और 'काव्य-प्रकाश' तथा छंद-शास्त्र पर भी एक पुस्तक लिखी। आपकी प्रणाली खूब अपनाई गई। दोहे और सवैयों के छंदों में पहले अलंकार या रस का लक्षण लिखना और फिर सवैये में उसका उदाहरण प्रस्तुत कर देना।

इस प्रकार रीति-काव्य-साहित्य ने हिन्दी गद्य-साहित्य को साहित्य की परख के लिए दो कसौटियाँ प्रदान कीं, रस और शैली (अलंकार, वक्रोक्ति, ध्वनि, छंद, गुण)। इन्हीं दो सिद्धान्तों के आधार पर हिन्दी गद्य का आलोचना-साहित्य खड़ा होता है। ये दोनों ही सिद्धान्त परम्परागत संस्कृत-साहित्य से हिन्दी-साहित्य में आये।

भारतेन्दु जी और उस समय के हिन्दी-लेखकों पर लोक-भावना और विचार का प्रभाव पड़ता जा रहा था। राष्ट्र में जो चेतना वैज्ञानिक विकास, राष्ट्रीय-भावना, सामाजिक उत्पीड़न, अंग्रेजी-शोषण, अमानुषिक धार्मिक कुरीतियों ने पैदा की उसने हिन्दी-गद्य-साहित्य को विविध विषय साहित्य-सृजन के लिए प्रदान किये। साहित्य को धर्म और रीति के क्षेत्रों से बाहर निकल कर झाँकने का अवसर मिला। साहित्य ने अपने विशाल आँचल में समय की सब राजनीतिक, सामाजिक और मानवीय प्रवृत्तियों को समेटा, संजोया और सुरक्षित रखने का साधन बनाया। प्रतिभा-सम्पन्न लेखकों ने उसे रचना बद्ध किया।

महावीरप्रसाद द्विवेदी—साहित्य के क्षेत्र में इस महान क्रांति के युग में आचार्य **महावीरप्रसाद द्विवेदी** का प्रादुर्भाव हुआ। **महावीरप्रसाद द्विवेदी** ने हिन्दी-गद्य की आलोचना प्राचीन सिद्धान्तों के आधार पर ही की। भाषा काटी-छाँटी, उसके गुण और दोषों पर गहरी नजर रखी। इसके अतिरिक्त भी आप कोरे रूढ़िवादी आचार्य नहीं थे। समय की प्रगति के समर्थक थे। सूर और तुलसी जैसे भावना-प्रधान कवियों की रचनाओं की आपने मुक्तकण्ठ से सराहना की है, रीतिकालीन परम्परा

का समर्थन नहीं किया। भक्ति और गाँधीवादी युग-चेतना का अपने साहित्य में समन्वय करने वाले मैथिलिशरण गुप्त के साहित्य की भी आपने प्रशंसा की है। आपका अधिकांश आलोचना-साहित्य प्रशंसा-गुणों से पूर्ण है। साहित्यिक-द्वेष आपकी आलोचनाओं से अपरिचित ही रहा। हिन्दी-गद्य साहित्य को कोई नई दिशा आपका आलोचना-साहित्य प्रदान नहीं करता, न कोई नये मानदण्ड ही आपने निर्धारित किये। परन्तु आपके इस क्षेत्र में किये गये अनथक परिश्रम के फल स्वरूप आलोचना की हिन्दी-गद्य में नवीन-धारा खुली और उसका विकास हुआ। आप हिन्दी आलोचना-साहित्य के पिता हैं।

आचार्य **महावीरप्रसाद द्विवेदी** के पश्चात **मिश्रबन्धु, पं० पद्मसिंह शर्मा**, तथा **भगवानदीन 'दीन'** के नाम सामने आते हैं। इनका आलोचना-साहित्य 'बिहारी' और 'देव' की श्रेष्ठता और हीनता खोजने तक ही सीमित हो गया। **पं० पद्मसिंह शर्मा** ने, जो हिन्दी, फारसी, उर्दू और संस्कृत के प्रकांड पंडित थे, तुलनात्मक आलोचना प्रस्तुत की। 'बिहारी सतसई' की टीका में एक-एक दोहे के भाव को लेकर आपने उर्दू और संस्कृत के उदाहरण प्रस्तुत किये। पाडित्य की खोजपूर्ण छटा है उसमें।

पांडित्य के आधार पर एक कवि को चढ़ाने और एक को गिराने की धुन इन आलोचकों में मिलती है। किसी नये आलोचना-सिद्धान्त का निर्माण या नई धारा की प्रेरणा नहीं। हिन्दी-साहित्य की मौलिक प्रतिभाएँ अपने मार्ग बदल चुकी थीं। साहित्य में बहु-विषयक धाराएँ प्रवाहित होती जा रही थीं। नये साहित्य का निर्माण हो रहा था लेकिन आचार्य-वर्ग की दृष्टि देव और बिहारी पर ही टिकी थी। भारतेन्दु की नई चेतना का प्रकाश उनके मस्तिष्क-द्वार में प्रवेश नहीं कर पाया था। प्राचीन का गौरव और प्राचीत की महानता के सामने नये उगने वाले नव चेतनापूर्ण साहित्य-भास्कर की किरणों का आभास इस पंडित-वर्ग के मस्तिष्क को न छू सका।

रामचन्द्र शुक्ल—इसी समय आलोचना-साहित्य में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का पदार्पण हुआ। आपने आलोचना-क्षेत्र में सर्व प्रथम साहित्य को समाज की कसौटी पर रख कर उसकी समीक्षा की। सामाजिक और राष्ट्रीय उत्थान के साहित्य को महावीरप्रसाद द्विवेदी जी ने भी प्रोत्साहन दिया था। परन्तु सामाजिक चेतना को आपने साहित्य की कसौटी नहीं बनाया। साहित्य की प्रवृतियों को शुक्लजी ने समाज की पृष्ठ-भूमि में रखकर सोचा। आचार्य **रामचन्द्र शुक्ल** ने साहित्य के सभी सिद्धांतों पर मौलिक ढंग से विचार किया और गम्भीरतापूर्वक उनका विवेचन प्रस्तुत किया। वैयक्तिक अनुभूति को आपने नहीं माना। आपका मत था कि सामान्य लोक-भूमि पर सामान्य भाव-व्यंजना का विकास होता है और वही भाव साहित्यकार की रचना का स्वर बन कर व्यापक समाज का स्वर बनता हैं। यही आपका 'काव्यात्मक लोकवाद' का सिद्धान्त है। सत या सत के प्रतीक का चित्रण ही रोचक हो सकता है असत या असत के प्रतीक का नहीं। पहला स्थान सतवस्तु का है बाद में विषय-चित्रण और भाषा की विशेषताएं आती हैं। ये ही दो मूल विचार आपके आलोचना-साहित्य की प्रेरणा बने और इन्हीं के आधार पर आपने आलोचना की।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल साहित्य पर पड़ने वाले नवीनतम प्रभावों को देख रहे थे और उसी के आधार पर प्राचीन को परखने की दिशा में विचार कर रहे थे। समाज के रूप की तरफ उनकी दृष्टि गई तो उन्होंने राम-राज्य के समाज का आदर्शवादी चित्र, जो गोस्वामी तुलसीदास जी द्वारा प्रस्तुत किया गया था, इस काल के समाज के सामने रखा। स्वांतः सुखाय-साहित्य की अपेक्षा आपने तुलसी के लोक-साहित्य की सराहना की।

शुक्ल जी आचार्य थे और आचार्य-पद्धति के अनुरूप ही आपने 'तुलसी' को सर्वश्रेष्ठ कवि माना, सूर और कबीर को नहीं। वर्णाश्रम-

धर्म और अवतारवाद में भी आपकी पूरी आस्था थी, इसलिए आपकी आलोचना में भावना-पक्ष का व्यापक रूप से स्थान रहना भी अनिवार्य था।

काव्य में प्रकृति-चित्रण की शुक्ल जी ने सराहना की। परन्तु खेद की बात है कि नई साहित्यिक प्रवृत्तियों की ओर आपका भी ध्यान न गया। काव्य की नई धाराएँ और नई शैलियाँ आपको आकर्षित न कर सकीं। राष्ट्रीय और सामाजिक जागरण के प्रकाश में नवोदित साहित्य का मूल्यांकन करने की दिशा में आपने कम विचार किया। समाज और राष्ट्र के गर्भ में जो क्रांति पल रही थी उसकी गर्मी भी आपके आलोचना-साहित्य मे नहीं आ पाई।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने हिन्दी-आलोचना-साहित्य को नवीन दिशा प्रदान की। साहित्य को लोक-वादी मूल्यांकन के आधार पर समाजवादी दृष्टिकोण प्रदान किया। सत्य को साहित्य के चित्रणाधार के रूप में स्वीकार किया। दो नई कसौटियाँ साहित्य के मूल्यांकन की निर्धारित कीं। रस और शैली के साथ सत्-चरित्रता और सामाजिकता का गठबन्धन कर दिया। साहित्य के आपने सभी अंगों का सैद्धांतिक विवेचन प्रस्तुत किया। आपकी आलोचना आपके अपने मौलिक सिद्धान्त-शास्त्र पर आधारित है। तुलसी, सूर और जायसी के साहित्य को लेकर आपने मौलिक ढंग से अध्ययन किया है और व्याख्या तथा विश्लेषणात्मक परिचय दिया है। हिन्दी-साहित्य का इतिहास भी आपकी हिन्दी आलोचना-जगत में एक अमूल्य रचना है ? जिसके आसन को अभी तक कोई साहित्य-इतिहास-ग्रन्थ नहीं छू सका।

अंग्रेजी साहित्य के सम्पर्क में हिंदी के विद्वान् बराबर आते जा रहे थे। **बाबू श्यामसुन्दर दास जी** ने अंग्रेजी समीक्षा-सिद्धान्तों का अनुशीलन किया और हिन्दी में उन्हीं के आधार पर 'साहित्यालोचन' की रचना की। 'विश्व-साहित्य' नाम से इसी समय पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी की

पुस्तक निकाली । इन पुस्तकों के द्वारा 'साहित्य' की व्याख्या पाठकों के सामने आई और भारतीय तथा योरोपियन सिद्धाँतों को एक जगह रख कर उन पर विचार भी किया गया। हिन्दी-साहित्य के विद्यार्थियों के दृष्टिकोण से यह कार्य बहुत ही महत्वपूर्ण था। परन्तु इनका आलोचन-साहित्य भी कोई मौलिक दृष्टिकोण न रखने के कारण अपनी कोई धारा न वना सका।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने नीति का आधार लेकर लोक और समाज की भावना को साहित्य में प्रविष्ट किया। इसकी प्रतिक्रिया भी हुई। पुराने रूढ़िवादी आचार्य आलोचकों ने उसे नहीं माना और साहित्यालोचना को भाव और शैली के बाहर की वस्तु नहीं माना। डा० रमाशंकर शुक्ल 'रसाल', गुलाबराय एम० ए०, विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, रामकृष्ण 'शिलीमुख' इत्यादि रामचन्द्र शुक्ल के सैद्धान्तिक विरोधी रहे। ये साहित्य के भाव-पक्ष पर व्यवहार-पक्ष की प्रधानता स्वीकार नहीं कर सके थे।

प्राचीन काव्य-शास्त्र और पाश्चात्य समीक्षा-शास्त्रों के सिद्धाँतों का सामंजस्य करके साहित्य की नवीन प्रवृत्तियों के आधार पर साहित्यालोचन का जो व्यापक क्षेत्र आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने बनाया उसमें साहित्य केवल भाव क्षेत्र तक ही सीमित न रह सका। भौतिक विज्ञान, मनोविज्ञान, इतिहास, दर्शन और राजनीति तथा समाज की व्यापक पृष्ठ-भूमि पर साहित्य ने अपना विकास किया और इन्हीं आधारों को लेकर आलोचना को भी नवीनतम दिशाएँ मिलीं। व्यापक दृष्टिकोण और अरूढ़िवादी विचारधारा लेकर नये आलोचक सामने आये। यह प्राचीनतावादी आलोचकों से दूसरी दिशा है।

इस दिशा के विद्वान् आचार्यों में व्यापक और मुक्त दृष्टिकोण के समन्वयकारी गुण हैं और ये विश्व के सभी समालोचना-ग्रन्थों के मूलाधारों को संघटित करने का परिश्रमपूर्ण प्रयास कर रहे हैं। खोज और अनुसंधान

का आज हिन्दी आलोचना-क्षेत्र मे विशेप जोर है। इस दिशा में महत्वपूर्ण कार्य करने वाले विद्वान् पंडित नन्ददुलारे 'वाजपेयी', आचार्य हजारी-प्रसाद द्विवेदी और डाक्टर नगेन्द्र के नाम उल्लेखनीय हैं।

हिन्दी-साहित्य-शास्त्र की रचना का विकास इस प्रकार दो धाराओं में हो रहा है, एक प्राचीन शास्त्रीय ढंग से, जिसमें साहित्य का भावना-पक्ष प्रधान है और दूसरी जिसमें चिंतन प्रधान है। साहित्य आज के युग में केवल भावना और भापा तक ही सीमित नहीं रह गया। मानव-चिंतन का व्यापक विकास साहित्य में समाविष्ट है। साहित्य आज विश्व के समस्त दार्शनिकों, अन्वेषकों, राजनीतिज्ञों और सुधारकों के अमूल्य विचारों का संग्रह है, केवल व्यक्ति विशेप की भावनाओं का भापा में प्रस्फुटन नहीं। साहित्य मानव-कल्याण और प्रगति के अमूल्य सिद्धान्तों का कलात्मक स्पष्टीकरण और चित्रण है। समाज और राष्ट्र के जीवन का मूल्यांकन है।

साहित्य का यही व्यापक दृष्टिकोण हिन्दी गद्य-साहित्य के विकास में भी न्यूनाधिक रूप में प्रतिलक्षित होता है। हिन्दी आलोचकों के उक्त दोनों वर्ग जिन कसौटियों को लेकर हिन्दी गद्य-साहित्य का परिशीलन करने पर जुटे हैं वे कसौटियाँ सही नही हैं। इन कसौटियों के आधार शताब्दियों पुराने संस्कृत-ग्रंथ है या आधुनिकतम, अंग्रेजी, फ्रेंच, जर्मनी और रूसी साहित्य। हिन्दी के ग्रन्थों को लेकर साहित्यालोचन की कसौटियाँ तैयार करने की दिशा में, खेद है, हिन्दी के किसी विद्वान् आलोचक ने कदम नहीं बढ़ाया। फिर भी इन स्वतन्त्र व जटिल रूप से विचार करने वाले आलोचकों ने महत्वपूर्ण कार्य किया है। इन आलोचकों के व्यापक दृष्टिकोण मे एकता होने पर भी विभिन्नता पर्याप्त है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल की भाँति इन्होने भी साहित्यालोचन पर सर्वाङ्गीण विचार किया है। इन आलोचकों में पंडित नन्ददुलारे वाजपेयी का समालोचनात्मक दृष्टिकोण सबसे उदार और व्यापक है। आप रचना को सामाजिक पृष्ट-

भूमि से पृथक रखकर उसका मूल्यांकन नहीं करते । डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी में भी यह गुण है । डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी वाजपेयी जी को मानवता के दृष्टिकोण में पीछे छोड़ जाते हैं क्योंकि वाजपेयी जी साहित्य का, सामाजिक पृष्ठभूमि में रखकर भी, शास्त्रीय दृष्टिकोण से ही उसका मूल्यांकन करते हैं ।

नन्ददुलारे वाजपेयी और **हजारीप्रसाद द्विवेदी** के बाद इस दिशा में **डा० नगेन्द्र** ने महत्वपूर्ण कार्य किया है । विदेशी साहित्य-शास्त्र के ग्रंथों का आप पर सबसे गहरा प्रभाव है। फ्रायड की विचारधारा का आपकी आलोचनाओं पर प्रभाव पड़ा है ।

इनके अतिरिक्त भी बहुत से हिन्दी आलोचकों के नाम गिनाये जा सकते हैं परन्तु उनसे कोई अभीष्ट सिद्ध नहीं होता । साहित्य-समीक्षा के क्षेत्र में यह शास्त्रीय धारा अबाध गति से प्रसारित हो रही है । हिन्दी गद्य-साहित्य भी विकसित होता जा रहा है । हिंदी-साहित्य की कविता और गद्य दोनों दिशाओं मे विविध धाराएं प्रसारित हो रही है । विश्व के पटल पर होने वाली क्रांतियों और महायुद्धों के फलस्वरूप, राजनैतिक वादों और वैज्ञानिक आविष्कारों के फलस्वरूप, मानव की चेतना पर जो क्रियाएँ और प्रतिक्रियाएँ हुईं, उनके फलस्वरूप राजनैतिक और सामाजिक मान्यताएँ बनीं, विचारधाराएँ फैली और उन्होने विश्व-साहित्य को प्रभावित किया ।

हिंदी-साहित्य के लिए यह संघर्ष का युग था । अंग्रेजी शोषण-चक्र देश की जनता पर तीव्र गति के साथ चल रहा था । हिंदी साहित्य के इस समय दो स्वरूप खड़े थे जो आशा और निराशा के स्वरों में बोलते थे । भय चिंता और गरीबी देश के वातावरण मे छाई हुई थी । ऐसे वातावरण में भी साहित्यानंद की कल्पना कर सकने वाला, अपनी ही आत्मा में सुख और शांति की कल्पना करने वाला, भावुक या रसिक कलाकार जैसे साहित्य का निर्माण कर

सकता था, वही हिन्दी का छायावादी कविता-साहित्य बना। छायावादी-कविता में रीतिकालीन प्रवृत्तियाँ पूरी तरह मिलती हैं, केवल शैली में स्वच्छन्द वृत्ति का अनुशीलन है, भाषा में शब्द-माधुर्य का प्रयोग है। अलंकार और छन्द के बन्धनों से कविता मुक्त हुई। 'निराला' ने 'जूही की कली' में, जो उनकी सर्वश्रेष्ठ रचना है, प्रेमी और प्रेमिका का वह शानदार चित्रण किया कि क्या किसी रीतिकालीन आचार्य ने किया होगा। महादेवी और 'प्रसाद' ने अपनी रचनाओं में उस रहस्यवाद की स्थापना की कि जिसके सिद्धाँतों की तरफ महाकवि कबीर को पीछे मुड़कर देखना पड़ा। इसी समय छायावादी कविताओं में घोर निराशा-वाद का भी प्रस्फुटन हुआ। राष्ट्रीय वातावरण की निराशा ने साहित्य और साहित्यकार को प्रभावित किया। अंग्रेजी के रोमाँटिक कवि शैली और कीट्स का प्रभाव भी इस समय की हिन्दी कविता-शैली पर अंग्रेजी माध्यम के द्वारा पड़ा। इस प्रकार 'छायावाद' नाम की चीज का विश्ले-षण करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि इस वाद को वाद-प्रेमियों ने किसी विचार के आधार पर नहीं बनाया बल्कि भाषा-शैली के आधार पर बनाया। एक ही वाद के अंदर रहस्यवाद, निराशावाद, रीतिवाद, अंग्रेजी का रोमाँटिसिज्म सभी कुछ समा गया।

इसी समय हिन्दी-साहित्य में गांधीवादी राष्ट्रीय चेतना से पूर्ण साहित्य की भी रचना हो रही थी। मैथिलीशरण गुप्त की 'भारत भारती' का शंखनाद बज चुका था। माखनलाल चतुर्वेदी की राष्ट्रीय कविताओं ने अपना पृथक् ही स्वरूप प्रदर्शित किया। राष्ट्रीय कविता लिखने वाले कवियों की संख्या भी कम नहीं रही। फिर गद्य के क्षेत्र में जो रचनाएँ लिखी जा रही थीं उनमें राष्ट्रीय चेतना कूट-कूट कर भरी थी। प्रेमचन्द जैसी महान् विभूतियों की कला-कृत्तियों का यह रचना-काल था।

छायावादी कविता-साहित्य से धार्मिक भावना का लोप हो गया। गद्य-साहित्य के विकास ने भी धार्मिक-क्षेत्र को न अपनाकर सामाजिक

और राष्ट्रीय क्षेत्र को अपनाया । आध्यात्मिक और दैविक भावना से पृथक मानवीय भावना को लेकर साहित्य का सृजन हुआ ।

इस समय देश में राष्ट्रीयता की भावना अंतर्राष्ट्रीयता की भावना में बदलती जा रही थी । मार्क्सवाद के सिद्धान्तों और रूस की राजनीति से प्रभावित भारतीय कम्यूनिस्ट-विचारधारा के समर्थकों ने भौतिकवाद और साम्यवाद के सिद्धान्तों के आधार पर विश्व के मानव मात्र को एक स्तर पर लाने का संदेश दिया । इस संदेश से प्रभावित होकर भी हिन्दी में साहित्य की रचना हुई ।

मार्क्सवादी विचारधारा को लेकर हिंदी आलोचना क्षेत्र में कुछ नये समालोचक सामने आये । आचार्य रामचन्द्र शुक्ल की निर्धारित दिशा में साहित्य का शास्त्रीय विवेचन चल रहा था । मार्क्सवादी समालोचकों ने साहित्य के भावपक्ष को गौण और विचार तथा शैलीपक्ष को प्रधानता देकर एक नई साहित्यालोचन की धारा 'प्रगतिवाद' के नाम से प्रवाहित की । इस धारा के अंतर्गत साहित्य का समाज के प्रति दायित्व, राष्ट्र के प्रति दायित्व, और मानव के प्रति दायित्व को परखा गया ।

आलोचना की दिशा में इन प्रगतिवादियों का यह स्तुत्य प्रयास था । साहित्य-कला का समाज और राष्ट्र के प्रति क्या दायित्व है, इसकी परख करना एक महत्वपूर्ण कार्य था । परन्तु यह महत्वपूर्ण कार्य ही साहित्य नहीं था । साहित्य के भावपक्ष की अवहेलना करके इस नये प्रगतिवादी आलोचक-वर्ग ने साहित्य की उपयोगिता की दिशा में जो पग बढ़ाया, उसने उसके महत्व को फीका कर दिया । केवल उपयोगिता के आधार पर कोई भी गद्य या पद्यात्मक रचना साहित्य नहीं हो सकती । इन प्रगतिशील आलोचकों में शिवदानसिंह चौहान, डा० रामविलास शर्मा और प्रकाशचन्द गुप्त के नाम उल्लेखनीय हैं ।

हिन्दी-साहित्य आज जबरदस्त उत्तरदायित्व के नीचे खड़ा है । बहुत बड़ा पर्वत है उसके सिर पर । इस बोझ को उठाने के लिए शक्तिशाली

लेखकों और आलोचकों की आवश्यकता है और वे हिन्दी में कम नहीं हैं। केवल शास्त्रीय पद्धति की आलोचना, समाज और मानव की पृष्ठभूमि पर शास्त्रीय आलोचना और शास्त्रीय पद्धति से एक दम विमुख प्रगतिवादी आलोचना, तीन धाराएँ हिन्दी में वर्तमान हैं।

एक चौथी धारा मनोविश्लेषणात्मक पद्धति के आधार पर भी हिन्दी आलोचना साहित्य में आई। इलाचन्द जोशी, 'अज्ञेय' तथा नलिन विलोचन शर्मा की आलोचनाएँ इसी विचार धारा से प्रभावित है। ये आलोचक कला का प्रयोजन मानस के अंतर्द्वन्द्वों के स्पष्टीकरण और चित्रण को मानते है।

साहित्या-लोचन की इस धारा का विकास हमें हिन्दी में अधिक नहीं मिलता। आज के अधिकांश आलोचकों की प्रवृत्ति न तो शास्त्रीय आलोचना की ही ओर अधिक आकृष्ट है और न मनोविश्लेषणात्मक धारा की ओर। प्रगतिवादी धारा की ओर आलोचक-वर्ग का अधिक सम्मान है, परन्तु साथ-ही-साथ साहित्य के भाव और कला पक्ष का वैसा विस्मरण उनकी रचनाओं में नहीं मिलता जैसे प्रगतिवादी आलोचना के समर्थकों ने उदाहरण प्रस्तुत किये हैं।

•

: ६ :

जीवनी-साहित्य का विकास

आत्म प्रकाशन का साहित्य हिन्दी गद्य में **जीवनी, आत्मकथा, रेखा चित्र और संस्मरणों** के रूप में आया है।

जीवनियाँ—

जीवनी में लेखक किसी अन्य व्यक्ति के जीवन चरित्र पर प्रकाश डालता है। जीवनी के लिखने में लेखक का अपना दृष्टिकोण महत्वपूर्ण नहीं होता। वह दूसरे की जीवन-कथा का उल्लेख करता है, परन्तु इस उल्लेख करने की शैली और उसकी भाव व्यंजना से लेखक का व्यक्तित्व उससे पृथक भी नहीं रह पाता।

जीवनी एक सुन्दर और सुव्यवस्थित साहित्य की धारा है। अभी तक साहित्यिक जीवनियाँ लिखने का किसी भी लेखक ने प्रयास नहीं किया। अंग्रेजी साहित्य में कुछ लेखक केवल यहाँ वहाँ के महापुरुषों की कलात्मक जीवनियाँ लिखने के ही कारण साहित्य में अपना स्थान रखते हैं।

जीवनियाँ लिखने की परम्परा हमारे साहित्य में काफी पुरानी है। गोस्वामी गोकुलनाथ जी की "चौरासी वैष्णवों की वार्ता", तथा नाभा जी कृत 'भक्तमाल' पुरानी रचनाएँ हैं।

हिन्दी गद्य-साहित्य में जीवनियाँ लिखने की दिशा में भी सर्वप्रथम प्रयास भारतेन्दु के समय में ही हुआ। भारतेन्दु जी ने स्वयं कई महा-पुरुषों के जीवन चरित्र लिखे। इन जीवन चरित्रों में कालिदास, रामानुज, विक्रम, सूरदास, नैपोलियन, सुकरात इत्यादि के नाम उल्लेखनीय हैं। इसी के कुछ समय पश्चात कार्तिकप्रसाद खत्री ने 'मीरा', 'शिवाजी' और

'अहिल्याबाई' के जीवन चरित्र लिखे। इसी समय कुछ अन्य लेखकों ने 'सूर', 'बिहारी' और 'नागरीदास' के भी जीवन चरित्र लिखे।

इसके पश्चात तो जीवनियों का मानो युग ही आरम्भ हो गया। धार्मिक, राजनैतिक, सामाजिक और ऐतिहासिक पुरुषों के जीवन चरित्रों को लेकर जीवनियां लिखी जाने लगी। भारतेन्तु जी के समय में इन जीवनियों की रचना साहित्यिक दृष्टिकोण से हुई। इनमें आदर्श और कला दोनों का समन्वय मिलता है। परन्तु महावीरप्रसाद जी के समय तक आते-आते जीवनियाँ लिखने का रूप बदल गया। आदर्श का स्थान सत्य और यथार्थ ने ले लिया और चरित्रनायक के जीवन की वास्तविकता को उभारने का प्रयास जीवनियों में प्रधान हो उठा। परन्तु फिर भी जीवनियाँ लिखने का कार्य आदर्श पुरुषों की जीवन-गाथाओं तक ही सीमित रहा। ऐतिहासिक तथा राजनीतिक देश भक्तों की जीवनियाँ इस काल में पर्याप्त मात्रा में लिखी गईं। 'राजा राममोहनराय', 'स्वामी दयानंद सरस्वती', 'लोकमान्य तिलक', 'महादेव गोविन्द रानाडे', 'लाला लाजपतराय', 'महात्मा गांधी', 'वीर जवाहर', 'सरदार पटेल', 'हर्ष', 'चन्द्रगुप्त मौर्य', इत्यादि की कई-कई जीवनियाँ लिखी गईं। साहित्यिक विभूतियों की जीवनियाँ भी सामने आईं। 'गोस्वामी तुलसीदास', 'महाकवि सूरदास', 'भारतेन्दु हरिश्चन्द्र', इत्यादि के जीवन चरित्रों पर भी जीवनी लेखकों ने प्रकाश डाला।

विश्व के प्रमुख व्यक्ति हिटलर, मुसोलनी, स्टालिन, इब्राहिम लिंकन, मेजिनी इत्यादि की भी जीवनियाँ लिखी गईं। बनारसी दास चतुर्वेदी ने 'सत्यनारायण कविरत्न', और 'एण्डरूज', सीताराम चतुर्वेदी ने 'मदनमोहन मालवीय', ब्रजरत्नदास ने 'भारतेन्दु हरिश्चन्द्र', सत्यदेव विद्यालंकार ने 'हमारे राष्ट्रपति', राहुल ने 'नये भारत के नये नेता', इत्यादि जीवनियाँ लिखीं। रामवृक्ष बेनीपुरी ने 'जयप्रकाश नारायण' और डा० रामविलास शर्मा ने 'निराला' की जीवनी पर प्रकाश डाला।

इस प्रकार जीवनी साहित्य का विकास प्राचीन ऐतिहासिक विभूतियों वर्तमान राजनीतिज्ञों, समाज सुधारकों, धार्मिकाचार्यों, साहित्यिकों, कलाकारों और विश्व के विख्यात राजनीतिक पुरुषों को लेकर हुआ।

हिन्दी गद्य-साहित्य में जीवनी-साहित्य का विकास जहाँ प्रौढ़-साहित्य में इतना कम हुआ है वहाँ बाल-साहित्य में इसका विकास विशेष महत्वपूर्ण है। वास्तव में जीवनी-साहित्य के महत्व को अभी तक हिन्दी लेखकों ने नहीं आँका और इस धारा का विशुद्ध साहित्यिक दृष्टिकोण से मूल्यांकन किया भी नहीं गया। साहित्यिक दृष्टिकोण से साधारण मनुष्य की जीवनी की ओर ध्यान नहीं दिया गया, असाधारण व्यक्तियों की जीवनियों तक ही यह साहित्य सीमित रह गया। जिस प्रकार उपन्यास या कहानी के पात्र के लिए असाधारण व्यक्ति को ही चुनना आवश्यक नहीं है उसी प्रकार साहित्यिक जीवनियों को लिखने के लिए भी ऐतिहासिक, राजनैतिक धार्मिक और सामाजिक महत्व के व्यक्तियों तक ही जीवनी-साहित्य को सीमित कर देना गलत है। जीवनी साहित्य का अभी तक हम साहित्यिक विकास नहीं मानते, कलात्मक विकास नहीं मानते, परिचयात्मक विकास मात्र ही अभी तक रचना बद्ध हुआ है।

आत्मकथाएँ

जीवनियों के अतिरिक्त आत्मकथाओं की दिशा में भी हिन्दी गद्य-साहित्य में कुछ महत्वपूर्ण रचनाएँ सामने आईं। आत्मकथाएँ लिखने की प्रणाली पश्चिम से हिन्दी में आई। भारतवर्ष में भी अंग्रेजी में कई महत्वपूर्ण आत्मकथाएँ लिखी गईं और बाद में उनके हिन्दी में अनुवाद हुए। श्रद्धानन्द की 'कल्याण मार्ग का पथिक' हिन्दी की प्रथम आत्मकथा है। आत्मकथा के साहित्य का विकास प्रधान रूप से साहित्यिक लेखकों की रचनाओं से प्रसारित न होकर राजनैतिक महारथियों की लेखनियों से हुआ। महात्मा गाँधी, पं० जवाहरलाल नेहरू, राष्ट्रपति राजेन्द्र प्रसाद, भाई परमानन्द इत्यादि की आत्मकथायें इस दिशा में अपना विशेष

स्थान रखती हैं। अनुवाद होने पर भी ये आत्मकथाएँ मौलिकता की छाप अपने में रखती हैं।

राजनैतिक महारथियों से पीछे साहित्यकार भी नहीं रहे। बाबू श्यामसुन्दर दास ने 'मेरी आत्म कहानी', गुलाबराय ने 'मेरी असफलताएं', हरिभाऊ उपाध्याय ने 'साधना के पथ पर', वियोगीहरि ने 'मेरा जीवन प्रवाह' राहुल सांकृत्यायन ने 'मेरी जीवन यात्रा', आत्मकथा कोटि की रचनाएँ हैं। इन रचनाओं में साहित्यिकता पर्याप्त मात्रा में पाई जाती है और इनकी रचना से एक नई धारा का विकास हुआ है।

संस्मरण

सम्पूर्ण जीवनियां और आत्मकथाओं के पश्चात जीवन पर प्रकाश डालने वाला संस्मरणात्मक साहित्य है। ये संस्मरण भी दोनों प्रकार के हैं, एक व्यक्ति द्वारा स्वलिखित तथा दूसरे अन्य लेखकों द्वारा लिखित। संस्मरण लेखन की शैली का विकास बहुत पुराना नहीं है और इसका अधिक विकास भी नहीं हो पाया है। इस दिशा में लिखी गई अधिकाँश रचनाएँ तो पत्र पत्रिकाओं तक ही सीमित हैं परन्तु उनमें से कुछ ग्रंथाकार रूप में भी प्रकाशित हो चुकी हैं।

प्राचीनता के विचार से पण्डित पद्मसिंह शर्मा से पीछे यह हिन्दी गद्य का साहित्य नहीं जाता। पण्डित पद्मसिंह शर्मा, बनारसीदास चतुर्वेदी, कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर', रामनाथ सुमन, राहुल सांकृत्यायन, भदन्त आनन्दकौशल्यायन इत्यादि के संस्मरण विशेष उल्लेखनीय हैं। इन संस्मरणों में आत्मप्रचार की भावना व्यक्त या अव्यक्त रूप से छिपी हुई मिलती है। इनका साहिरियक महत्व इसलिए भी अधिक है कि इनमें निकटतम व्यक्तिगत अनुभूति के दर्शन होते हैं। ये रचनाएँ यथार्थ के निकट होने से कुछ बहुत आवश्यक सामग्री पर प्रकाश डालती हैं। इन लेखकों में रामवृक्ष बेनीपुरी और कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' के संस्मरण साहित्यिक दृष्टिकोण से विशेष सुन्दर, विशेष कलात्मक और रोचक भी बने हैं। गद्य साहित्य की ये स्थायी निधि हैं।

रेखा·चित्र

जीवनी, आत्मकथा और संस्मरणों का गद्य-साहित्य में विकास जहाँ इतिवृत्तात्मक दिशा से हुआ वहां जीवन वृत्तांत पर प्रकाश डालने वाले रेखा चित्रों का विकास हमें पूर्ण रूप से कलात्मक साहित्य के अंतर्गत मिलता है। साहित्य के मौलिक रचनाकारों ने ही रेखा चित्रों की दिशा में लेखनी उठाई। महादेवी वर्मा और सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' ने कुछ बहुत सुन्दर रेखा चित्र लिखे हैं। महादेवी ने अपने रेखा चित्रों में अपनी आत्म कथा को समो दिया है। 'कुली भाट' और 'बिल्लेसुर बकरिहा' व्यंग्य प्रधान हैं। इनके पश्चात सुमित्रानंदन पंत, भगवतीचरण वर्मा, प्रभाकर माचवे, शिवमंगलसिंह सुमन इत्यादि ने भी कुछ रेखा चित्र गद्य-साहित्य को प्रदान किये हैं। जीवन-साहित्य का यह सबसे कलात्मक रूप है। ये रेखा चित्र भावना प्रधान हैं, विवरण प्रधान नहीं। शैली का लालित्य और गाम्भीर्य भी इनमें कम नहीं है। जीवनी साहित्य की यह एक नई और सुन्दर धारा है, परन्तु इसका विकास अभी हिन्दी गद्य में कम ही हुआ है।

: १० :

हिन्दी गद्य की विविध धाराओं का विकास

सन् १९४७ में भारत की स्वतन्त्रता के पश्चात् हिन्दी गद्य ने एक दिन वह भी देखा जब हिन्दी चालीस करोड़ भारतवासियों की राष्ट्र-भाषा बनी, राज्य-भाषा बनी। अभी तक विश्वविद्यालयों और विद्यालयों मे शिक्षा की माध्यम हिन्दी भाषा नहीं थी। हिन्दी का पठन-पाठन केवल हिन्दी साहित्य तक ही सीमित था। शिक्षा के अन्य विषयों का पठन-पाठन अंग्रेजी मे होता था। अंग्रेजी ही राज्य-भाषा भी थी।

हिन्दी के राष्ट्र-भाषा घोषित होने पर हिन्दी में ललित साहित्य के अतिरिक्त भी अन्य विषयों पर साहित्य का होना हिन्दी साहित्य की आवश्यकता बना। सभी विषयों पर हिन्दी ग्रन्थों की माँग, विशेषरूप से शिक्षा-क्षेत्र में, हुई। इस माँग की पूर्ति के लिए उन विषयों के लेखकों और प्रकाशकों ने यही उचित समझा कि उनके अंग्रेजी-ग्रन्थों को हिन्दी में अनुवाद करके लाया जाय।

इस दिशा में दो कठिनाइयाँ सामने आईं। प्रथम कठिनाई हर विषय के टैक्नीकल (रूढ़) शब्दों की थी। इसके लिए हिन्दी के विद्वानों ने प्रयास करके कोष तैयार किये। इन कोषों की तैयारी में भी कई मत सामने आये। एक मतावलम्बी हर शब्द को संस्कृत से खोज लाने का प्रयास करने लगा और उसने इस बात को संस्कृत-साहित्य ही नहीं भारतीय संस्कृति पर भी एक लाँछन समझा कि उसकी भाषा मे किसी ज्ञान-विज्ञान के टैक्नीकल शब्दों का भण्डार अपूर्ण है। दूसरा मत इन शब्दों को उर्दू, फारसी और अरबी तक की शरण में ले जाने वाला भी सामने आया। एक तीसरे वर्ग ने अंग्रेजी के प्रचलित शब्दों को ज्यों का त्यों भी

रखने का प्रयास किया। टॅक्नीकल शब्दों के इस प्रकार तीन रूप बन गये।

टॅक्नीकल शब्दों के इन तीन रूपों का विकास हमें गत सात आठ वर्षों में विज्ञान, इतिहास, भूगोल, भौतिक विज्ञान, मनोविज्ञान, राजनीति विज्ञान, समाज शास्त्र, शिक्षा-विज्ञान इत्यादि क्षेत्रों मे मिलता है। तीनों ही प्रकार के प्रयोग लेखकों ने किये हैं। इसके फलस्वरूप अभी तक इनके प्रयोगों में एकरूपता नहीं आ सकी। हिन्दी में छपने वाले उक्त विषयों के साहित्य के गद्य में यह एक भारी दोष आ गया है। अच्छा होता यदि हिन्दी साहित्य और गद्य ने अंग्रेजी के टॅक्नीकल शब्दों को ज्यों-का-त्यों अपना लिया होता। इससे शब्द-कोष निर्माताओं का श्रम भी बच जाता और भाषा के विकास में रवानी आ जाती। लेखकों और उन विषयों के विद्वानों को अधिक सतर्क रहने की आवश्यकता न होती।

टॅक्नीकल शब्दों की कठिनाई से भी कुछ कम महत्वपूर्ण विषय के ज्ञाताओं का हिन्दी-गद्य से अनभिज्ञ होना नही था। उक्त विषयों के हिंदी गद्य-साहित्य में जो दूसरे दोष मिलते हैं वे इन विषयों के लेखकों के हिन्दी भाषाविज्ञ न होने के कारण हैं। इनमें कुछ लेखकों ने तो अपनी पुस्तकों के अनुवाद-कार्य का उत्तरदायित्व भी प्रकाशकों के हाथों में ही सौप दिया। जिसके फलस्वरूप इन अनुवादों में से कम ही ग्रंथों की भाषा सुन्दर गद्य का उदाहरण बन सकी है। फिर भी कुछ ग्रन्थ ऐसे अवश्य हैं कि जिनके अनुवादों में काफी सतर्कता बरती गई है। विषय के अनधिकारिक अनुवाद कराने वालों की व्यवस्था में जो अनुवाद हुए उनका मूल्य कुछ रुपया प्रति पृष्ठ तक ही सीमित रह गया। उन अनुवादों में न तो वह भाषा का प्रवाह ही आ सका जो मूल लेखक ने अंग्रेजी में प्रवाहित किया है और न विषय का वैसा विवेचन और विन्यास ही सामने आया जो मूल लेखक के मस्तिष्क का चित्र था, व्यवस्था थी अपने वैज्ञानिक विचार के स्पष्टीकरण की। शब्दों का कोरा अनुवाद भावों की

गम्भीरता और सार्थकता से दूर हट गए। इन अंग्रेजी ग्रन्थों का इस प्रकार हिन्दी पाठकों के सामने वह मूल्य न बन सका जो उसे अंग्रेजी में प्राप्त था।

लेकिन, कुछ अनुवाद बहुत सुन्दर और व्यवस्थित भी हुए हैं। हिंदी भाषा के विद्वानों के तत्वावधान में जिन वैज्ञानिक ग्रंथों के अनुवाद हुए हैं उनमें ऐसी कमियाँ नहीं आने पाईं। इन अनुवादों ने हिन्दी गद्य-साहित्य को ललित और धार्मिक साहित्य से पृथक कई धाराएँ प्रदान की। अनुवादों के साथ ही साथ बहुत-सी मौलिक रचनाएँ प्रकाश में आईं और उन्होंने अपनी धारा के साहित्य को विकसित किया।

मनोविज्ञान

मानव के जीवन-विकास में मनोविज्ञान का महत्वपूर्ण स्थान है। मनोविज्ञान का साहित्य से भी विशेष सम्बन्ध है। लालजीराम शुक्ल ने इस दिशा में महत्वपूर्ण कार्य किया है। 'सरल मनोविज्ञान', 'बाल मनोविज्ञान', 'नवीन मनोविज्ञान', 'आधुनिक मनोविज्ञान', 'मनोविज्ञान और जीवन' ग्रन्थों में मनोविज्ञान के विभिन्न रूपों का विवेचन किया है। प्रो० हंसराज भाटिया के 'शिक्षा मनोविज्ञान' और 'सरल मनोविज्ञान' दो ग्रन्थ हैं। यदुनाथ सिन्हा का 'मनोविज्ञान' भी इस धारा की पुस्तकों में उल्लेखनीय है। सावित्री सिन्हा ने बाल मनोविज्ञान पर 'आपका मुन्ना' नाम से तीन पुस्तकें लिखी है। एल्फ्रेड एडलर, जान केमेडी, जे० एम० ग्राहम इत्यादि की पुस्तकों के भी अनुवाद सामने आये हैं।

मनोविज्ञान का विकास बच्चों, बड़ों, स्त्री, पुरुष और समाज को लेकर हुआ और सभी के सम्बन्ध में विचारकों ने विचार किया। मनोविज्ञान का ललित साहित्य पर प्रभाव हमें पहले से ही दिखाई देता है। मनोविज्ञान के ग्रन्थों का हिन्दी गद्य में विकास बहुत ही नवीनतम है। इधर जब से हिन्दी ने राष्ट्र-भाषा बन कर भारत के शिक्षण क्षेत्रों में पदार्पण

किया है तभी से मनोविज्ञान की रचनाओं का विकास हुआ है। मनोविज्ञान पर स्वतंत्र ग्रन्थों की रचना हुई है। मानव-जीवन की विविध अवस्थाओं में उसकी कैसी मनोवैज्ञानिक स्थिति होती है और उस मनोवैज्ञानिक स्थिति का उसके जीवन पर क्या प्रभाव पड़ता है इसका मनोविज्ञान के ग्रंथों में भी विवेचन किया गया है। मानव के बाल-जीवन को लेकर, स्त्री पुरुष की यौवनावस्था को लेकर, मानव के सामाजिक पहलू को लेकर तत्व दर्शकों ने चिन्तन किया है। मनुष्य के विकास और पतन की अवस्थाओं को परखा है। मनोविज्ञान की दिशा में शिक्षा मनोविज्ञान का सबसे अधिक महत्व है। इस दिशा में काफ़ी प्रगति के साथ हिन्दी गद्य-साहित्य की रचना हुई। 'शिक्षा और स्वास्थ्य', 'शिक्षण विधान', 'प्रौढ़ शिक्षा', पाश्चात्य और भारतीय शिक्षा के इतिहास, आधुनिक शिक्षा का विकास, पश्चिमी और पूर्वी शिक्षा प्रणालियाँ, शिक्षा के सिद्धान्त, भारतीय शिक्षण-शैलियाँ, अध्यापन कला, शिक्षण-पद्धतियाँ, भाषा-विज्ञान, नागरिक शास्त्र, सामान्य ज्ञान-विज्ञान, रचनात्मक शिक्षा, सामाजिक शिक्षा, शिक्षा-शास्त्री, बुनियादी शिक्षा, शिक्षा-सिद्धान्त, इत्यादि दिशाओं में मनोवैज्ञानिक साहित्य की रचना हुई।

सरल ज्ञान-विज्ञान

मनोविज्ञान और विशेष रूप से शिक्षा-मनोविज्ञान के साहित्य के इस विकास ने हिन्दी गद्य-साहित्य को नवीन दिशा प्रदान की। विज्ञान का व्यापक क्षेत्र गद्य-साहित्य निर्माता के लिए खोल दिया। मनोविज्ञान के साथ-ही-साथ सरल भौतिक विज्ञान की प्रगति का साहित्य भी हिन्दी गद्य में लिखा गया। विश्व के वैज्ञानिक चमत्कारों का इतिहास और परिचय-साहित्य सामने आया। इस गद्य-साहित्य ने हिन्दी-पाठकों को विश्व की वैज्ञानिक प्रगति का ज्ञान कराया। इसमें दो प्रकार का साहित्य लिखा गया। एक वह जिसने मनुष्य तथा अन्य जीव-जन्तुओं के विषय में विचार किया और दूसरा वह जिसने प्रकृति के तत्वों और उनकी शक्ति की

खोज की। प्रथम प्रकार के विज्ञान ने समुद्री जीव जन्तुओं, विलुप्त जन्तुओं, कीटाणुओं, खुर वाले जानवरों, हिंसक पशुओं, स्तनपायी जन्तुओं, पक्षियों, वनस्पतियों इत्यादि के जन्म लेने, रहने-सहने, खाने-पीने, आकार-प्रकार और स्वभाव के बारे में खोज की और फिर अपनी खोज के परीक्षण भी किये। उन परीक्षणों की कहानियों का ज्ञानवर्धक साहित्य बना। हिन्दी गद्य-साहित्य में इन जीवों के वैज्ञानिक विकास, जीवन-यापन के क्रम इत्यादि को लेकर बहुत सी पुस्तकें लिखी गई हैं।

दूसरे प्रकार के साहित्य के अंतर्गत आविष्कारों की कहानियाँ हैं। बिजली के आविष्कार, भाप के आविष्कार, आकाशवाणी के आविष्कार, सिनेमा के आविष्कार, वायुयानों के आविष्कार, परमाणु बम के आविष्कार की कहानियाँ भी हिन्दी गद्य-साहित्य के विकास में एक महत्वपूर्ण धारा को लेकर आईं। इस गद्य-साहित्य ने भी हिन्दी-पाठकों को विज्ञान के निकट लाने में बहुत योग दिया। जिन विद्यार्थियों ने इन वैज्ञानिक कहानियों को पढ़ा उनके मस्तिष्क की जीवन के आरम्भ से ही पुरानी रूढ़ियाँ ढीली पड़ने लगीं। हिन्दी पाठक के मानसिक विकास पर इस साहित्य का प्रभाव पड़ेगा। हिन्दी ललित-साहित्य में विज्ञान के इन आविष्कारों का प्रकाश पहले ही हो चुका था परन्तु अपने मूल रूप में यह साहित्य इधर के आठ दस वर्षों के अन्दर ही विशेष रूप से विकसित हुआ। इस साहित्य में विशेष रूप से अंग्रेजी पुस्तकों की सहायता से ही साहित्य रचना हुई है।

शरीर विज्ञान

शरीर विज्ञान को लेकर भी हिन्दी गद्य में काफ़ी बड़ा साहित्य लिखा गया। मानव शरीर के वैज्ञानिकों ने अर्थात् डाक्टर, वैद्य और हकीमों ने अपने ग्रन्थों की हिन्दी गद्य में रचना की। एलोपेथी, होम्योपेथी, वैद्यक और यूनानी हिकमत की पुस्तकें प्रकाशित हुईं। वैद्यक का अपूर्व साहित्य हिन्दी गद्य में आ गया। मानव शरीर से सम्बन्ध रखने वाला साहित्य

छुग। इसी के अंतर्गत यौन-विज्ञान या काम-विज्ञान का महत्वपूर्ण-साहित्य भी आता है जिसके स्वस्थ प्रकाशन से युवकों को उचित लाभ हो सकता है। अस्वस्थ साहित्य का प्रकाशन इस दिशा में पाठक की वासना को जगाकर उसे अनुचित सुविधाओं में निरंकुश व्यभिचारी और सुविधाओं की अनुपस्थितियों में कुण्ठाग्रस्त बना सकता है। यौन-विज्ञान के साहित्य की रचना हिन्दी में कम नहीं हुई। अंग्रेजी के ग्रन्थों से प्रभावित होकर क्रांति और प्रगति के जोश में मन्मथनाथ गुप्त ने इस प्रकार के साहित्य का सफलतापूर्वक सृजन किया है। यौन-विज्ञान के विविध पहलुओं पर प्रकाश डाला है। श्री मन्मथनाथ गुप्त ने इस विषय का अच्छा अध्ययन किया है और उनकी प्रायः सभी रचनाओं में इसका प्रभाव प्रधान हो उठता है। उनका यौन-विज्ञान का ज्ञान जो इस दिशा के साहित्य मे उनका एक गुण है वही साहित्य की अन्य धाराओं में प्रस्फुटित होकर घोर अवगुण बन गया है।

इस प्रकार मानव-विज्ञान, जन्तु-विज्ञान, वनस्पति-विज्ञान, धातु-विज्ञान, वैज्ञानिक आविष्कार सम्बन्धी बहुत बड़ा साहित्य हिन्दी-गद्य की सम्पत्ति बना। इन धाराओं में बहुत से ग्रन्थों की रचना हुई। हिन्दी-गद्य के लिए ये सभी विषय नवीन थे परन्तु हिन्दी-लेखकों ने गत सात-आठ वर्षों में जिस प्रगति और प्रतिभासम्पन्नता का परिचय दिया है वह सराहनीय है। इन धाराओं के साहित्य ने हिन्दी-शिक्षित-समाज के वैज्ञानिक स्तर को ऊँचा उठाया है और उसकी चेतना को विकसित करने की दिशा में महत्वपूर्ण योग दिया है।

धार्मिक साहित्य—हिन्दी-गद्य के विकास में हम पीछे देख चुके हैं कि धर्म-ग्रन्थों का कितना महत्वपूर्ण योग रहा है। ईसाई-धर्म के ग्रन्थों का हिन्दी में अनुवाद हुआ। कुरान शरीफ का भी हिन्दी में अनुवाद पंडित कालीचरन जी ने किया। आर्यसमाज के प्रवर्तक स्वामी दयानन्द सरस्वती ने अपने प्रधान ग्रन्थ 'सत्यार्थ-प्रकाश' की रचना हिन्दी मे ही की।

धार्मिक दृष्टिकोण से गीता-प्रेस गोरखपुर ने जहाँ बहुत महत्वपूर्ण कार्य किया है वहाँ हिन्दी-गद्य का भी स्वभाविक विकास होता गया है। धार्मिक ग्रन्थों की टीकाओं के रूप में बहुत से सुन्दर ग्रन्थ सामने आये हैं। इन ग्रन्थों का गद्य भी अपने ढंग का निराला ही है। इनमें भावना की छटा है और पांडित्य भी कम नहीं है। वैदिक, पौराणिक और भक्ति-काल के प्रमुख साहित्य पर टीकाएँ प्रस्तुत की गई हैं। प्राचीन ग्रंथों की नवीनतम व्याख्याएं हुई हैं। धर्म और अध्यात्म के विषयों पर मौलिक रचनाएं हुई हैं। मानस और गीता के अध्ययनों के अलावा भागवत, उपनिषद तथा दर्शन की दिशा में साहित्य लिखा गया है। धार्मिक साहित्य के अंतर्गत रामकृष्ण परमहंस, विवेकानन्द, स्वामी रामतीर्थ, हरिभाऊ उपाध्याय तथा राधाकृष्णन् का साहित्य भी प्रधान रूप से सामने आता है। इनकी बहुत सी पुस्तकें हिन्दी-गद्य में प्रकाशित हुई हैं और उनका व्यापक प्रसार हो रहा है। गद्य-साहित्य के विकास में धार्मिक-साहित्य के लेखकों ने जो योग दिया है वह भुलाया नहीं जा सकता।

गाँधीवादी साहित्य—गाँधीवादी साहित्य की रचना प्रधान रूप से हिन्दी-गद्य में ही हुई है। महात्मा गाँधी के लगभग सम्पूर्ण साहित्य का परिमार्जित हिन्दी-गद्य में प्रकाशन हुआ है। 'आत्मकथा', 'ग्राम सेवा', 'प्रार्थना-प्रवचन', 'आरोग्य की कुंजी', 'आश्रमवासियों से', 'बापू की सीख', 'बुनियादी शिक्षा', 'राष्ट्रभाषा हिन्दुस्तानी', 'वर्ण-व्यवस्था', 'संयम बनाम भोग', 'विद्यार्थियों से', 'महिलाओं से', 'हरिजन समस्या', इत्यादि गाँधी जी के ग्रन्थों ने हिन्दी-गद्य में आकर भारत के कोने-कोने में बैठे हिन्दी के पाठकों को प्रभावित किया है। महात्मा गाँधी देश के राष्ट्र-पिता थे और उन्होंने देश के सामने आने वाली हर समस्या पर गम्भीरता के साथ विचार किया था और फिर अपने विचारों को जनता के पास तक पहुँचाने के लिए रचनाबद्ध किया था। आपकी लिखी हिन्दी-गद्य का अपना ही रूप है। विषय-व्याख्या के साथ सरल प्रणाली में प्रस्तुत होता है। न उसमें पांडित्य की रमक है और न साहित्य की छटा दिखाने

का प्रयास। विचारों की ठीक वाहिनी के रूप मे आपने हिन्दी-गद्य का प्रयोग किया है और वह बहुत ही सफल प्रयोग रहा है।

महात्मा गाँधी के अतिरिक्त उसी विचारधारा से प्रभावित होकर अन्य साहित्य की भी रचना हुई। महात्मा गाँधी के साथ रहने वाले तथा उनके सम्पर्क में आने वाले व्यक्तियों ने भी अपने विचारों का स्पष्टीकरण किया। साथ ही महात्मा गाँधी पर श्रद्धा रखने वाले व्यक्तियों ने उनके सम्बन्ध में श्रद्धापूर्ण साहित्य की भी रचना की। उनके साथी अन्य विद्वानों ने उनके विचारों का स्पष्टीकरण भी किया। इस दिशा में **राष्ट्रपति राजेन्द्रप्रसाद, जवाहरलाल नेहरू, राजगोपालाचार्य,** तथा **विनोबा** की रचनाएँ अपना व्यापक प्रभाव रखती हैं। **विनोबा** का साहित्य आज के राष्ट्रीय जीवन की वह सम्पत्ति है जिसका विकास, जनता के विचार से, आज सबसे अधिक व्यापक है। इस साहित्य की रचना भी हिन्दी-गद्य में हुई है और हो रही है। इन रचनाओं में विशुद्ध विचार-वाहिनी के रूप में हिन्दी-गद्य का विकास हुआ है, कलात्मक हिन्दी-गद्य का नहीं।

राजनीतिक साहित्य—राजनीतिक-साहित्य के अंतर्गत दो प्रकार का हिन्दी-गद्य-साहित्य आता है। एक वह जो राजनीति-विज्ञान के तत्वों का निरूपण और विश्लेषण करता है तथा दूसरा वह जो राजनीति से सम्बन्धित वर्तमान और भविष्य के विषय में विचार करता है। इन दोनों ही दिशाओं के ग्रंथ हिन्दी-गद्य में प्रकाशित हुए है। डा० सत्यकेतु का 'राजनीति-शास्त्र' उपयोगी ग्रंथ है। इनके अतिक्ति राजनीति के पाठ्यक्रम-सम्बन्धी साहित्य की भी रचना हो रही है। इन रचनाओं के लेखन तथा प्रकाशन ने हिन्दी-गद्य के विकास में महत्वपूर्ण योग दिया है। भारतीय राजनीतिज्ञों में पडित जवाहरलाल नेहरू की पुस्तकों के अनुवाद भी महत्वपूर्ण हैं।

इतिहास—इतिहास की दिशा में राजनीति की अपेक्षा अधिक कार्य हुआ है। **राधाकुमुद मुखर्जी, भगवतशरण उपाध्याय, पट्टाभि सीता**

रमैया, डा० मोती चन्द्र, वासुदेव उपाध्याय, हरिदत्त वेदालंकार, भाई परमानन्द, डा० सत्यकेतु, भगवद्दत्त इत्यादि के महत्वपूर्ण ग्रंथो ने इतिहास-साहित्य के विविधरूपों पर प्रकाश डाला है। प्राचीन, मध्य और आधुनिक इतिहास के विभिन्न रूपों को परखा है। आर्यकालीन और उससे भी पुरानी संस्कृति का चित्रण किया है, हिन्दू-सभ्यता को परखा है, भारत में ब्रिटिश राज्य-सत्ता की कहानी कही है, प्राचीन कलाओं पर भी प्रकाश डाला है। योरोप के इतिहास पर भी रचनाएँ हुई हैं और इसी प्रकार इतिहास के अङ्ग और उपांगों की पुष्टि हुई है। बहुत सी पुस्तकें इस दिशा में लिखी गई हैं। अनुवादों की संख्या भी कम नहीं है। प्राचीन वेशभूषा, रहन-सहन, रीति-रिवाज, खान-पान, शिक्षण, इत्यादि पर भी प्रकाश डाला है। इस प्रकार प्राचीन का महत्वपूर्ण ज्ञान इतिहास-पुस्तकों के द्वारा हिन्दी गद्य-साहित्य में आया है। भारत के सही इतिहास का साहित्य भी इधर पाँच-सात वर्षो मे ही विशेष रूप से सामने आ रहा है। सन् १९४७ से पूर्व का इतिहास आज के इतिहास से सर्वथा भिन्न है। पुराने इतिहास का नई खोजों के साथ स्वतंत्रता के युग मे नया मूल्यांकन किया गया है। हिन्दी-गद्य मे इतिहास-साहित्य के इस मूल्यांकन का नया दृष्टिकोण विकसित हुआ है।

खेती तथा टैक्नीकल साहित्य

भारतीय स्वतंत्रता के पश्चात् गद्य का सभी दिशाओं में विकास हुआ। शिक्षा का मानव के विकास-क्रम में सदा से महत्वपूर्ण स्थान रहा है। इसीलिए किसी भी ज्ञान को जब तक शिक्षा का माध्यम न प्राप्त हो तब तक उसका सही विकास असम्भव है।

भारत में यों तो नाम मात्र को अंग्रेजी शासनकाल में ही औद्योगिक शिक्षा की संस्थाएँ स्थापित होने लगी थीं परन्तु उनका विकास केवल सरकारी आवश्यकता तक ही सीमित था। भारत के जन-जीवन मे औद्योगिक क्रांति का बीजारोपण करना अंग्रेजी सरकार का उद्देश्य

नही था। भारत के स्वतंत्र हो जाने के बाद राष्ट्रीय सरकार ने बहुत से उद्योगों को प्रोत्साहन दिया। बड़े-बड़े उद्योगों के साथ-ही-साथ कुटीर-उद्योगों को भी विकसित करने के लिए गम्भीर प्रयत्न किया। इसके फलस्वरूप देश मे उद्योगों का तो विकास हुआ ही उनके साहित्य की भी रचना हुई और यह सब हिन्दी-गद्य मे ही लिखा गया।

कृषि-विज्ञान को लेकर, ट्रैक्टर की खेती, खाद का उपयोग, भारतीय कृषि-विज्ञान, फलों की खेती, गन्ने की खेती, कपास की खेती, धान की खेती, आलू की खेती, टमाटर की खेती, अच्छे बीज, तरकारी की खेती, पशुपालन, सिचाई इत्यादि खेती के महत्वपूर्ण विषयों पर पुस्तकें लिखी गईं।

बिजली के विभिन्न यंत्रों-सम्बन्धी, तेल-इंजनों-सम्बन्धी, रेडियो सम्बन्धी, मोटर-सम्बन्धी, फोटोग्राफी-सम्बन्धी, वर्कशाप-सम्बन्धी, साइकिल-सम्बन्धी, वेल्डिग-सम्बन्धी, कताई-बुनाई और धुनाई-सम्बन्धी, दर्जी-सम्बन्धी इत्यादि विषयों पर पुस्तकें प्रकाश मे आईं। इन दिशाओं में, अभी खेद है कि अच्छा साहित्य नही लिखा गया और न ही सरकार ने इस दिशा में कोई महत्वपूर्ण कदम उठाया। कितना अच्छा होता यदि सरकारी प्रकाशन-विभाग मनोरंजक-साहित्य को न छूकर औद्योगिक विकास के साहित्य का प्रकाशन करते और देश की औद्योगिक उन्नति में योग देते।

अन्य

हिन्दी गद्य के इस विकास में जहाँ अन्य शास्त्रों का लेखन हुआ है वहाँ समय के महत्वपूर्ण शास्त्र अर्थशास्त्र की अवहेलना भला कैसे हो सकती थी। अर्थशास्त्र पर काफी रचनाएँ छपी है। भूगोल, गणित, नागरिक शास्त्र, समाज-शास्त्र, भौतिक-विज्ञान, वाणिज्य इत्यादि दिशाओं में भी हिन्दी गद्य-साहित्य में रचनाएँ लिखी और प्रकाशित हुई है। इन दिशाओं

में बहुत अधिक विकास नहीं मिलता, परन्तु ऐसी कोई दिशा भी दिखाई नहीं देती जिस ओर हिन्दी गद्य-साहित्य ने पग न बढ़ाया हो।

इस प्रकार हिन्दी-गद्य का विकास केवल ललित-साहित्य के सृजन तक ही सीमित नहीं रहा। हिन्दी-गद्य में वैज्ञानिक, ऐतिहासिक, धार्मिक, राजनैतिक तथा अन्य बहुत सी ज्ञान और विज्ञान की धाराओं का सफल विकास हुआ है और यह विकास प्रगति के पथ पर है। नई-नई प्रतिभाएँ सामने आ रही है। पुरानी प्रतिभाएं भी हिन्दी-गद्य के इस विकास-युग में उपयोगी सहयोग प्रदान कर रही है।

*

: ११ :

हिन्दी गद्य-साहित्य का भविष्य

भारत की राजनीतिक स्वतंत्रता के पश्चात् हिन्दी के राष्ट्रभाषा बन जाने पर हिन्दी के लेखकों का उत्तरदायित्व बढ़ गया। अन्य भाषाओं के लेखकों में भी हिन्दी का लेखक बनने की प्रेरणा जाग्रत हुई। जो हिन्दी में लिख नहीं सकते थे उन्हें अपनी पुस्तकें हिन्दी में अनुवाद स्वरूप लाने का आकर्षण हुआ।

अनूदित गद्य-साहित्य के क्षेत्र में

भारत की प्रादेशिक भाषाओं (बॅंगला, मराठी, गुजराती तामिल तेलगी इत्यादि) के महत्वपूर्ण ग्रंथों का हिन्दी में अनुवाद हुआ। इनके फलस्वरूप ऐसे लेखकों की आवश्यकता हुई जो एक से अधिक भाषाओं के अधिकार पूर्वक अनुवाद कर सकते हैं। विदेशी साहित्य केभी हिन्दी में अनुवाद छपने प्रारम्भ हो गये। इनका प्रारम्भ अंग्रेजी-भाषा के अनुवादों से ही हुआ। इसके फल स्वरूप जर्मनी, और रूसी-साहित्य हिन्दी में अंग्रेजी के माध्यम द्वारा आया। लेकिन धीरे-धीरे जर्मनी, फ्रेंच और रूसी भाषा के विद्वानों ने सीधे मूल भाषाओं से भी हिन्दी में अनुवाद किये और ये अनुवाद निश्चित रूप से अंग्रेज़ी के माध्यम द्वारा आये अनुवादों की अपेक्षा अधिक महत्वपूर्ण थे। मूल रचनाओं के विचार, भाव और चित्रण का पूरी तरह ध्यान रखा गया। इस दिशा में शिक्षा-मंत्रालय द्वारा सुसंचालित साहित्य-एकादेमी भी महत्वपूर्ण कार्य कर रही है। श्री प्रभाकर माचवे और क्षेम चन्द्र 'सुमन' के अनथक परिश्रम और एकादेमी के सलाहकार-मण्डल की मूल्यवान सलाह के फलस्वरूप कुछ सुन्दर ग्रन्थों के अनुवाद सामने आये हैं। निश्चय ही अनुवाद सुन्दर है। इन अनुवादों के फलस्वरूप हिन्दी-गद्य-साहित्य का विकास हुआ है। साहित्य-एकादेमी की योजना

संसार के सब प्रमुख ग्रन्थों को हिन्दी में लाने की है। इस कार्य का भविष्य कितना व्यापक और इसकी पूर्ति होने पर हिन्दी-गद्य-साहित्य की क्या स्थिति होगी, इसका सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है। विश्व के सम्पूर्ण साहित्य का हिन्दी मे अनूदित होकर आजाना हिन्दी-साहित्य के विकास की दृष्टि से नितान्त आवश्यक है और यह कार्य भी हिन्दी-गद्य को ही सम्पन्न करना है। विदेशी भाषाओं के कविता-साहित्य का मूल संदेश भी प्रारम्भ में हिन्दी-गद्य के माध्यम द्वारा ही हिन्दी में प्रस्तुत किया जा सकता है। इस दिशा में कार्य भी कम नहीं हो रहा।

जहाँ विदेशी साहित्य को हिन्दी में लाने का प्रयास दिखाई देता है, वहाँ प्राचीन संस्कृत-साहित्य के प्रति भी उदासीनता हमें हिन्दी-गद्य में नही मिलती। संस्कृत के काव्य, नाटक और अन्य ग्रंथों को भी हिन्दी-गद्य में लाने का प्रयास संस्कृत और हिन्दी के विद्वान् कर रहे हैं। संस्कृत के कलाकारों और उनकी रचनाओं के महत्व के विषय में हिन्दी-पाठको के ज्ञान में वृद्धि हो रही है।

प्रादेशिक भाषाओं का सम्पूर्ण पठनीय और स्वस्थ साहित्य हिन्दी में आने की आवश्यकता है और इस दिशा में आशाप्रद प्रगति है। विश्व की अन्य भाषाओं का पठनीय और स्वस्थ साहित्य-हिन्दी गद्य में आ रहा है और इस दिशा में भी पर्याप्त संलग्नता से कार्य हो रहा है। प्राचीन आर्य-भाषा संस्कृत के मूल ग्रन्थों को भी हिन्दी में लाने का सफल प्रयास हो रहा है।

इस प्रकार भारत की सब प्रादेशिक भाषाओं, विश्व की उन्नत भाषाओं और प्राचीन साहित्य के पठनीय और स्वस्थ सत् साहित्य से हिन्दी का गद्य-साहित्य बहुत शीघ्र पूर्ण दिखाई देगा। हिन्दी-गद्य-साहित्य का भविष्य बहुत ही उज्ज्वल है और आशा है कि यदि प्रगति की यही गति रही तो बहुत शीघ्र हिन्दी-गद्य के भंडार में संसार के सभी रत्न दिखाई देगे।

मौलिक गद्य-साहित्य के क्षेत्र में

हिन्दी गद्य-साहित्य-क्षेत्र में गद्य की विभिन्न धाराओं के अन्तर्गत हमने उनकी गतिविधि, उनके साहित्यकारों और उनके साहित्य, उनकी प्रवृत्तियों और परिस्थितियों का अध्ययन किया। उसके अध्ययन से स्पष्ट है कि हिन्दी-गद्य ने मौलिक-साहित्य की रचना-दिशा में भी पर्याप्त प्रगति की है। पीछे हमने साहित्य की हर धारा को परखा और देखा है कि विश्व की नवीनतम चेतना का प्रभाव और सामंजस्य हमें उसमें मिला है। साहित्य के गम्भीर सागर पर विचारों और भावनाओं की ऊँची-ऊँची लहरें उठी हैं और वे उसी में समा गई हैं। परन्तु फिर भी अनेक लहरें ऐसी हैं जिनके चित्र और जिनके प्रभाव साहित्य के पटल पर अमिट हो गए हैं। उनके विचारों, उनकी भावनाओं और उनकी कल्पनाओं के सरल, मधुर, सरस, स्वस्थ और सशक्त चित्रण हिन्दी-गद्य में वर्तमान हैं।

हिन्दी-गद्य के मौलिक साहित्य के अंतर्गत हम उस साहित्य को लेते हैं जिसकी रचना लेखक ने हिन्दी-गद्य में की हो। इस दृष्टि से इसमें अनुवादों को सम्मिलित नहीं किया जा सकता। जो रचनात्मक, आलोचनात्मक तथा अन्य ज्ञान-विज्ञान सम्बन्धी साहित्य मूल लेखकों ने अपने विचार और अपनी भावनाओं को व्यक्त करने के लिए हिन्दी-गद्य में प्रस्तुत किया, वही हिन्दी-गद्य का मौलिक-साहित्य है।

कलात्मक साहित्य

संस्कृत-साहित्य के कलात्मक-साहित्य का विकास महाकवि **वाल्मीकि** के आश्रम में होता है, राजकीय संरक्षण में नहीं। हिन्दी के प्रतिभा-सम्पन्न कलाकारों, कबीर, तुलसी, सूर, प्रेमचन्द, पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र' और भगवती प्रसाद 'वाजपेयी' के साहित्य का विकास भी राजकीय संरक्षण में नहीं हुआ, नहीं हो रहा। राजकीय संरक्षण में राज-

कीय शासन प्रधान हो जाता है और साहित्यकार की भावना हीन हो जाती है। उसका आत्मसम्मान शासकीय-अकुश के नीचे कराहने के अतिरिक्त और कुछ कर ही नही सकता। ऐसी परिस्थितियों मे साहित्यकार भी विकृत हो जाता है और उसका साहित्य भी। रीतिकाल की साहित्यिक विकृति का यही प्रधान कारण है।

कलात्मक साहित्य की शिक्षा विद्यालयों में नही दी जाती। प्रतिभा-सम्पन्न कलाकारों का विकास अपने आप होता है। स्कूल की ट्रेनिग से उपन्यासकार, कहानीकार, नाटककार और कवि नही निकलते, उनके तो स्कूल ही पृथक बनते हैं और ये स्कूल अपनी-अपनी विचारधारा के आधार पर बनते है, अपने-अपने साहित्यिक प्रयोगों के आधार पर बनते हैं। इस प्रकार के स्कूल हिन्दी गद्य में भी बने है और उनके साहित्य का निर्माण भी हुआ है, हो रहा है।

इन स्कूलों की रचना प्रधान रूप से विचारधारा द्वारा संचालित होती है क्योंकि आज के साहित्य की प्रधान कर्णधार मस्तिष्क की चेतना है। सत्-साहित्य की संतुलित विचारधारा तो होनी ही चाहिए। विचार का अनुसरण भावना करती है क्योंकि शुष्क और नीरस चित्रण-मात्र रूप में कोई रचना आने पर कलात्मक साहित्य नहीं बन सकती। मानस की उदात्त भावनाओं को जगाने, प्रेरणा देने और उत्साहित करने की क्षमता उसमें होनी आवश्यक है। इस प्रकार के कला-साहित्य का निर्माण करने वाले हिन्दी-कलाकारों की गिनती कराना यहाँ आवश्यक नहीं।

भारत के स्वाधीन होने और हिन्दी के राष्ट्र भाषा बनने के पश्चात् हिन्दी के लेखकों को सरकारी-संरक्षण मिला। स्वप्नतुल्य नौकरियों का भी साहित्य के त्यागी और क्रांतिकारी वीरों ने चुम्बन किया। फिल्म-लाइन के असफल साहित्यकारों ने भारत-सरकार के आकाशवाणी-केन्द्र की शरण ली। केन्द्रीय तथा प्रादेशिक सरकारों ने पुरस्कार वितरित

करके हिन्दी के साहित्यकारों को और भी हीन दशा को पहुँचा दिया। हिन्दी के लेखकों को आर्थिक सहायता ही देनी थी तो रचना के नाम पर न देकर व्यक्तियों की साहित्यिक सेवाओंके आधार पर देना अधिक उपयुक्त होता। इससे अमहत्वपूर्ण रचनाओं को महत्व न मिलता और साहित्य का गलत विज्ञापन भी न होता। फिर भी इस सरकारी सहयोग और संरक्षण के फलस्वरूप कलात्मक साहित्य रचना की ओर काफी लेखकों की प्रवृत्ति जागरूक हुई और उसके फलस्वरूप बहुत सी व्यर्थ रचनाओं के साथ कुछ अच्छी रचनाएँ भी सामने आईं।

आकाशवाणी-केन्द्र के लिए आकाशवाणी-नाटक और लेखों की रचना हुई। भारत-सरकार के सूचना-विभाग द्वारा पत्रों और पुस्तकों के प्रकाशन से कलात्मक-साहित्य को प्रेरणा दी गई। परन्तु इस दिशा मे हमे कोई महत्वपूर्ण उन्नति दिखाई नहीं देती। साधारण प्रकाशकों जैसी भी गति और सम्पन्नता हमें उस विभाग में नहीं मिलती।

कलात्मक गद्य-साहित्य के विकास में इस प्रकार हमने देखा कि सरकारी सूचना-विभाग, आकाशवाणी-केन्द्र और सरकारी पुरस्कारों की व्यवस्था का सहयोग रहा है।

इस काल में तीन प्रकार के कलात्मक साहित्य की रचना हुई। इनमें से पहला प्रकार तो सरकार की सहमति का साहित्य है और दूसरा सरकार से असहमति का साहित्य। सहमति के साहित्य में वर्तमान राष्ट्रीय प्रगति की आलोचना करने का प्रश्न ही नहीं उठता और असहमति के साहित्य में राष्ट्रीय सरकार ने जो कुछ किया है और जो कुछ वह कर रही है, वह सब गलत है। तीसरे प्रकार का साहित्य वह है जो समय में होने वाले परिवर्तन को देख रहा है, राष्ट्र की उन्नति को देख रहा है, राष्ट्र के कर्णधारों के कामों को उदात्त भावना से परख रहा है और साथ ही उनकी असफलताओं का चित्र भी उसके सामने है। इस साहित्य का

द्रष्टा और लेखक पृथ्वी की उस सतह पर खड़ा है जहाँ से उसे राष्ट्र, समाज और आज के मानव का सही चित्र दिखाई दे रहा है। उसका चित्रण ग़लत नहीं हो सकता।

तीनों प्रकार का गद्य-साहित्य आज हिन्दी कला साहित्य में पनप रहा है। इन तीन मूल प्रेरणाओं को लेकर राजनीति से सम्बन्धित साहित्य लिखा जा रहा है। राजनीतिक भावना के साथ ही समाज की भावना भी सामने आती है और वह पात्रों के चुनाव से सम्बन्ध रखती है। जो लेखक जिस समाज के हैं या अपना उस समाज से निकट का सम्बन्ध रखते हैं वे ही उस समाज का सही चित्रण कर पाते हैं। यों फैशन के रूप में भी आज हिन्दी गद्य में कम साहित्य की रचना नहीं हो रही। परन्तु यह साहित्य उस समाज की वास्तविकता, विचार, भावना और अंतर्द्वन्द्वों को नहीं समझ सकता। यह फैशन का चित्रण है। नई दिल्ली की कोठियों में बैठकर, दोनों समय भरपेट भोजन न पाने वाले गाँव के गरीब किसान का चित्रण करना ठीक वैसी ही उपहास की सामग्री है जैसे काले शरीर पर साहब की नेक टाई वाली सफेद पोशाक।

यह तीन प्रकार का साहित्य हमें नाटक, उपन्यास, कहानी इत्यादि सभी ललित कला-साहित्य की दिशाओं में मिलता है।

हिन्दी गद्य साहित्य की विभिन्न कलात्मक धाराओं में हिन्दी कलाकारों ने विश्व के वैज्ञानिकों मनोवैज्ञानिकों, राजनीतिज्ञों, समाज-सुधारकों और मानवतावादी विचारकों से प्रेरणा लेकर अपने ज्ञान और अपनी अनुभूतियों की नौकाएँ तिराई हैं। इन नौकाओं में ही कलात्मक-साहित्य के निर्माता अपने-अपने स्कूल खोले बैठे हैं, साहित्य की सरिता में नौका-विहार कर रहे हैं। इनकी संख्या में भी निरन्तर वृद्धि होती जा रही है। इस दिशा में हिन्दी-गद्य-साहित्य का भविष्य बहुत उज्ज्वल है।

आलोचनात्मक साहित्य

कलात्मक साहित्य के विकास के साथ-साथ हिन्दी गद्य के आलोचनात्मक और अनुसंधानात्मक-साहित्य की भी पर्याप्त वृद्धि हुई है। जहाँ तक आलोचना-साहित्य का सम्बन्ध है हम आलोचना शीर्षक के अंतर्गत विस्तार के साथ विचार कर चुके हैं। विश्वविद्यालयों द्वारा जो अनुसधान का कार्य हो रहा है वह हिन्दी-गद्य साहित्य के विचार से बहुत महत्वपूर्ण है। आलोचना-साहित्य का उत्तरदायित्व भी आज के नवोदित हिन्दी गद्य-साहित्य के प्रति कम महत्वपूर्ण नहीं। एक आलोचक-वर्ग पुराने शास्त्रों का अध्ययन कर रहा है तो दूसरा भक्ति और रीतिकाल के साहित्य का। तीसरा आलोचक-वर्ग भारतेन्दु से 'प्रसाद', 'निराला', 'पंत', और 'महादेवी' पर आकर रुक जाता है। इनसे आगे बढ़ते आचार्यवर्ग को संकोच होता है। बेटों को आखिर बाप कैसे मान लें, समस्या भी तो तिरछी है।

जो कार्य आचार्य-वर्ग सम्पन्न नहीं कर सका, या यों कहिये कि जिसे करने का उसके पास समय नहीं है, उस उत्तरदायित्व को युवक आलोचकों ने अपने कंधों पर सँभाला है और हिन्दी-गद्य के कलात्मक साहित्य में से सुन्दर कृतियों का चयन किया है। परन्तु खेद है कि यह युवक आलोचक-वर्ग अपने उत्तरदायित्व को ठीक तरह समझ कर कार्य नहीं कर रहा। इसने गुटबन्दियों में पड़कर लिखनेवालों के चेहरों को देखने का प्रयत्न किया, उनकी रचनाओं में क्या लिखा है, इसे पढ़ने का प्रयास नहीं किया। इसके फलस्वरूप इनकी आलोचनाओं में वह जान पैदा ही नहीं हो पाई जो आचार्य रामचन्द्र शुक्ल की पद्मावत की भूमिका में मिलती है।

फिर भी आलोचना-साहित्य का विकास कम नहीं हुआ। यह ठीक है कि इधर जो कुछ आलोचना-साहित्य लिखा गया है वह सब हिन्दी गद्य-साहित्य की स्थायी सम्पत्ति के रूप में स्वीकार नहीं किया जा

सकता, परन्तु वर्तमान आवश्यकता की इससे महान् पूर्ति हुई है। इस दिशा में भारत के विभिन्न विश्वविद्यालयों और विद्यालयों के अध्यापकों और मौलिक विचारकों ने विशेप योग दिया है। आलोचना-साहित्य का कोप हिन्दी आलोचकों ने तेज़ी के साथ भरा है। इस आलोचना-साहित्य में उच्च कक्षाओं के लिए लिखे गये साहित्य की प्रधानता है। धीरे-धीरे इस साहित्य का परिमार्जन भी होगा।

हिन्दी का आलोचना-साहित्य शास्त्रीय बंधनों से मुक्त होकर साहित्य को मानव के विकास की सत् वृत्तियों के आधार पर परखने की दिशा में अग्रसर हुआ है। साहित्य भावना और शैली से आगे बढ़कर विचार के क्षेत्र में पदार्पण कर चुका है। ऐसी दशा में इसका आलोचक यदि शास्त्रीय कटघरे में खड़ा रह कर ही इसकी परख करने का प्रयास करेगा तो उसके परीक्षण का निर्णय सही नहीं आ सकता। समीक्षक को चाहिए कि वह उस भूमि पर खडा होकर समीक्षा करे जिस भूमि पर रचना का निर्माण हुआ है। तभी वह सही निर्णय दे सकने का अधिकारी है।

हिन्दी गद्य-साहित्य का आलोचना-अंग इस प्रकार काफ़ी पुष्ट हुआ है और इसके विकास की बहुत सी धाराएँ खुली हैं। आलोचना-साहित्य को भी मुक्त होकर रचना के विविधि पहलुओं पर विचार करने का अवसर मिला है। आलोचना-साहित्य का भविष्य भी कला-साहित्य से किसी प्रकार कम उज्जवल नहीं है।

अनुवाद और मौलिक गद्य-साहित्य के भविष्य पर विचार कर लेने के पश्चात् यह जान लेना भी आवश्यक है कि हिन्दी-गद्य के विकास का बहुत बड़ा क्षेत्र ज्ञान-विज्ञान की दिशा में है। इस दिशा में हिन्दी के अन्दर अभी तक उतनी प्रगति नहीं जितनी कला और आलोचना-साहित्य के क्षेत्र में मिलती है। इसीलिए इस दिशा में गद्य के विकास का बहुत बड़ा क्षेत्र खुला पड़ा है।

निकट भविष्य में इन सभी धाराओं का गद्य-साहित्य विकसित होकर इतने वेग के साथ प्रवाहित होगा कि जिसमें देश का मानवमात्र अपनी प्यास बुझा सकेगा, स्नान कर सकेगा और अपने मन तथा शरीर को स्वच्छ कर सकेगा। हिन्दी गद्य-साहित्य लेखकों के निरन्तर प्रयास के फल स्वरूप बराबर पुष्ट होता जा रहा है, बराबर गतिवान होता जा रहा है। हिन्दी-गद्य-साहित्य का भविष्य निश्चय ही बहुत उज्ज्वल है और उसमें विश्व की चेतना के सम्पूर्ण साहित्य को अपने आँचल में सँभाल कर सुरक्षित रखने की क्षमता है।